पश्चाताप

आत्मशुद्धी से परम पद प्राप्ती

आचार्य गुणरत्नसूरि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक पावन परिवर्तन

चातुर्मास

आत्म जागृति का सुअवसर

आत्म निरीक्षण • निजभाव परीक्षण • स्वदशा अवलोकन

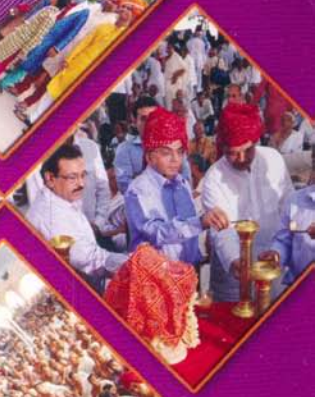

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहीं भुरझा न जाए...

(सचित्र भव आलोचना का विवेचन)

लेखक

प.पू. युवकजागृतिप्रेरक दीक्षादानेश्वरी आचार्यदेव
श्रीमद् विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.

प्रकाशक

जिनगुण आराधक ट्रस्ट
151, गुलाल वाडी, कीका स्ट्रीट, मुंबई – 400 004.
फोन : 23474791 / 23867581 मोबाईल : 9820451073

मूल्य 60/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

LEARN FROM PAST, LIVE IN PRESENT AND PLAN THE FUTURE.

भूतकाल की भूलों से सीखो... वर्तमान में जीओ और भविष्य की प्लानिंग (योजनाएँ) इस प्रकार बनाओ कि जिससे उन भूलों की पुनरावृत्ति न हो पाए।
भूल इंसान से ही होती है, परंतु वह अपनी भूलों का इकरार कर सद्गुरु के पास प्रायश्चित ले लेता है, तो वह इंसान पूजनीय व परमात्मा बन जाता है।

इस पुस्तक की विशेषता

धन्य है जिनशासन।
जिसमें पापीओं के पाप को धोनेवाले प्रायश्चित का उत्तम विधान है।
क्या गंगा मैली तो मैली ही रहेगी? नहीं। नहीं...
प्रक्रिया करोगे, तो वह शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल बन जायेगी।
प्रायश्चित में यह अपूर्व शक्ति है, कि
उसके बल पर आत्मा संपूर्ण निर्मल बन सकती है।

पाप को नहीं छुपाना हो तो... जाईये, जल्दी गुरुदेवश्री के पास और प्रायश्चित लेकर शुद्ध बन जाईये।

उत्तम जीवन की नींव को निर्मल बनाने के लिए हृदय में पाप का भय उत्पन्न करना चाहिए,
पहले पाप का भय उत्पन्न होगा, तभी पाप के प्रति धिक्कार खड़ा होगा, यदि धिक्कार खड़ा होगा,
तो प्रायश्चित के द्वारा शुद्ध बनने की इच्छा उत्पन्न होगी।

TO TELL A LIE IS BAD, BUT TO TELL A LIE AND HIDE IT IS WORST.

झूठ बोलना, वह बुरी बात है, लेकिन झूठ बोलकर छुपाना, वह बहुत बुरी बात है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाम	:	प. पू. द्विशताधिक दीक्षादानेश्वरी आचार्यदेव श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म. सा.
जन्म	:	सं. १९८९, पोष सुद ४, सन् १९३२, पादरली (राज.)
दीक्षा	:	सं. २०१०, माघ सुद ४, सन् १९५४, मुंबई
गुरुनाम	:	प. पू. सिद्धांत महोदधि आ. प्रेमसूरीश्वरजी म. सा. के पट्टालंकार प. पू. वर्धमान तपोनिधि भुवनभानुसूरीश्वरजी म. सा. के सुशिष्य मेवाड़ देशोद्धारक प. पू. जितेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.
गणि पदवी	:	सं. २०४१, मृगशीर्ष सुद ११, सन् १९८५, अहमदाबाद
पंन्यास पदवी	:	सं. २०४४, फाल्गुन सुद २, सन् १९८८, जालोर (राज.)
आचार्य पदवी	:	सं. २०४४, ज्येष्ठ सुद १०, सन् १९८८, पादरली (राज.)
भाषा	:	गुजराती, हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत
साहित्य रचना	:	क्षपक श्रेणी, उपशमना-करण, आदि ६० हजार श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत ग्रंथ और गुजराती, हिन्दी तथा अंग्रेजी में चलो सिद्धगिरि चले, कहीं मुरझा न जाए (सचित्र), जैन रामायण आदि
ज्ञानाभ्यास	:	न्याय, व्याकरण, काव्य, कर्म-साहित्य, आगम आदि अनेक शास्त्र

लेखक का परिचय...

विशेषताएँ

१) २१ साल की युवावय में सगाई छोड़कर दीक्षा ली।

२) जिरावला तीर्थ में ३२०० आराधकों की सामूहिक चैत्री ओली का रिकोर्ड।

३) २७०० यात्रिकों का मालगाँव (राज.) से पालिताणा, ६००० यात्रिकों का राणकपुर का और ४००० यात्रिकों का पालितणा से गिरनार का ऐतिहासिक छःरी पालक संघ।

४) २८ युवक-युवतिओं की सुरत में, ३८ युवक-युवतिओं की पालिताणा में सामूहिक दीक्षाएँ और साथ में कुल २४४ दीक्षा दानेश्वरी।

५) भेरुतारक तीर्थ के प्रेरणादाता, जिसकी प्रतिष्ठा में ७०० साधु-साध्वी भगवंतो की उपस्थिति और चैत्री ओली में २७४ भाई-बहनों ने यावज्जीव चोथे व्रत को स्वीकार किया।

६) जिरावला तीर्थ के भव्य जीर्णोद्धार में सामूहिक मार्गदर्शक, श्री वरमाण-तीर्थ जीर्णोद्धार के मार्गदर्शक।

७) शंखेश्वर महातीर्थ में ऐतिहासिक ४७०० अट्ठम।

८) सूरत सामूहिक दीक्षा में ५१०००, पालिताणा में ५२००० और अहमदाबाद में ५५०० युवानों की समूह सामायिक।

९) क्षपकश्रेणी ग्रंथ के सर्जनहार, जिस ग्रंथ की जर्मन प्रोफेसर क्लाऊज ब्रून ने प्रशंसा की है।

१०) ५१ आध्यात्मिक ज्ञान शिविरों के सफल प्रवचनकार।

११) ८१ शिष्य-प्रशिष्यों के तारणहार और २०१ साध्वीओं के गणनायक।

१२) नाकोडा ट्रस्ट द्वारा संचालित निःशुल्क विश्वप्रकाश पत्राचार पाठ्यक्रम के द्वारा १ लाख विद्यार्थीओं के जीवन में ज्ञान का प्रकाश फैलाया।

१३) सिद्धवड पटांगण (आदपुर, घेटीपाग) में श्री सिद्धगिरिराज की ऐतिहासिक नवाणु-यात्रा में २२०० यात्रिकों का रिकार्ड।

१४) ४१ छ'री' पालक संघ के निश्रादाता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"भव आलोचना" की पुस्तक मैंने पढ़ ली है। पढ़ने वाले को प्रेरणा जगा सकती है। श्रीसंघ को ऐसा साहित्य देना अत्यावश्यक है।

- प.पू. स्व. गच्छाधिपतिश्री आचार्यदेव श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.

प. पू. आचार्यदेवश्री के अभिप्राय

ज्ञानी भगवंतोने प्रायश्चित का बहुत महत्त्व बताया है। यह पुस्तक "कहीं मुरझा न जाए" वर्तमान युग में बढ़ रहे पापों के सामने रेड सिग्नल दिखाने का काम कर सकती है।

- प.पू. आ. हेमप्रभसूरीश्वरजी म.सा.

आचार्यश्री शास्त्र के ज्ञाता, सावधानी वाले व परिश्रमी है। इसलिये यह पुस्तक व्यवस्थित सुंदर और शास्त्रीय है, इसमें कोई प्रश्न नहीं है। आप ऐसे कार्यों के द्वारा शासन सेवा और भविष्य की आराधना की उत्तम भूमिका का सर्जन कर रहे हैं। वह अनुमोदनीय है।

- पू. सुविशाल गच्छाधिपतिश्री आचार्यदेवश्री जयघोषसूरीश्वरजी म.सा.

प.पू.आ. गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा. की पुस्तकें आज की शिक्षित पीढ़ी के लिये लाभदायी है।

- पू.आ. प्रभाकरसूरीश्वरजी म.सा.

"कहीं मुरझा न जाए" ..... वैभवी दुनिया में गुमराह जीवों को आध्यात्मिक वांचन चिंतन सुपथदर्शक बनता है। आपश्री के चिन्तन, लेखन अत्यन्त प्रशंसनीय है। वर्षों के परिशीलन, चिंतन, मनन द्वारा तैयार हुई यह पुस्तक दुनिया की अभिनव अजायबी को टक्कर दे कर आध्यात्मिक विकास में प्रगति कर दे, ऐसे अद्‌भुत सर्जनात्मक सूचन सहज मिलते हैं। ऐसे साहित्य का सर्जन, प्रचार-प्रसार अत्यावश्यक है।

- आचार्यदेवश्री विद्यानंदसूरीश्वरजी म.सा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक की कलम से...

मानव आवश्यकता होने पर वस्तु का प्रकटीकरण करने का प्रयत्न करता है। "NECESSITY IS THE MOTHER OF INVENTION" पाली के चातुर्मास में एक दिन भव आलोचना के विषय पर प.पू. आचार्यदेवश्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा. का प्रवचन हुआ। उसमें रुक्मिणी साध्वीजी वगैरह के उदाहरण सुनकर कई युवक-युवतियों एवं बुजुर्गों की भावना हुई कि हम भव आलोचना लेकर अपना जीवन पवित्र बनायें, किन्तु हिन्दी में आज तक इस किस्म की कोई किताब छपी नहीं थी, जिसको पढ़कर स्वयं किये हुए पापों का स्मरण कर सके। इसलिये वहाँ सर्वप्रथम यह पुस्तक छपवाई गई, उसके बाद ७ हिन्दी संस्करण और ८ गुजराती संस्करण छपे हैं। आज यह ८वां हिन्दी संस्करण आपके हाथ में आ रहा है। इससे आप इसकी उपयोगिता स्वयं समझ सकते हैं।

आज चारों ओर पापों के विचार व प्रवृत्ति बेहद चल रही है। ऐसे समय में उसके ऊपर ब्रेक लगानी अति जरूरी है। इसलिये आप इस पुस्तक को पढ़ेंगे, तो आत्मा में अन्तःपरिवर्तन आयेगा। इसलिये इस पुस्तक का विशेष महत्त्व है।

कहानियों को अच्छी तरह समझने के लिये चित्र ज्यादा उपयुक्त होते हैं। यानी १०० शब्दों से, अेक चित्र कहानी को समझाने के लिये ज्यादा समर्थ है। ONE PICTURE IS WORTH THAN THOUSAND WORDS. इसलिये इस बार नया संस्करण सचित्र व संशोधित कर प्रकाशित कर रहे हैं। इसलिये यह पुस्तक ज्यादा उपयोगी बनेगी। ऐसा हमें आत्म विश्वास है।

यह पुस्तक पुरुष व महिला सभी के लिए उपयोगी है, इसलिए यह पुस्तक जब महिलायें पढ़ें, तब अपनी रीति से अपने पापों का चिंतन कर आलोचना लिखें।

इस पुस्तक को जैसे-जैसे पढ़ेंगे, वैसे-वैसे हृदय में पश्चाताप होगा। उससे कर्म की बेहद निर्जरा होगी। यह पुस्तक पढ़ते-पढ़ते कितने ही सैंकड़ों युवक-युवतियों ने बड़े-बड़े आँसू बहा कर प्रायश्चित लिया है। आप भी इस पुस्तक को एक बार पढ़कर रख न दें, परन्तु तीन-चार बार तो जरूर पढ़ें व दूसरों को पढ़ने की प्रेरणा दें।

ली. जिनगुण आराधक ट्रस्ट, मुंबई-भिवंडी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री पालीताणा विनीतानगरी के पवित्र प्रांगण में

पूज्यपाद 323 दीक्षादानेश्वरी आ.श्री गुणरत्नसू. म.सा. आदि 340 साधु-साध्वीजी भगवंत की शुभनिश्रा में आयोजित

आध्यात्मिक चातुर्मास-उपधान तप की पावन स्मृति में प्रायश्चित पुस्तक का पुनित प्रकाशन

संघवी मोहनलालजी मुथा

संघवी पानीदेवी मुथा

संघवी हंसराज मुथा

संघवी कमलादेवी मुथा

संघवी रमेशकुमार मुथा

संघवी भाग्यवंतीदेवी मुथा

संघवी सुरेशकुमार मुथा

संघवी मधुदेवी मुथा

आयोजक : संघवी पानीदेवी मोहनलालजी मुथा सोनवाडीया परिवार, चेन्नई मांडवला.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रम

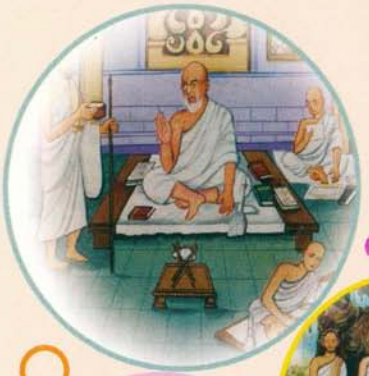

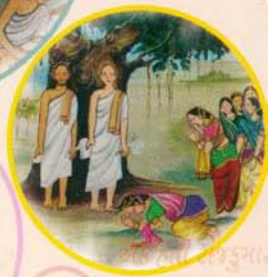

विषय	पृष्ठ
१) एक भव्य आत्मा की आत्मव्यथा	१
२) भविष्य की मनोव्यथा	९
३) गुरुदेवश्री का आत्मवासन	१०
४) आलोचना का महत्त्व	१३
५) आलोचना का प्रायश्चित किसे दिया जाये?	१४
६) आलोचना सब को करनी चाहिए	१५
७) आज भी प्रायश्चित विधि है	१७
८) आलोचना देने वाले गुरु कौन होते हैं?	१८
९) आलोचना के बिना मुरझाये हुए फुल	२१
१) रुक्मिणी का दृष्टांत	२१
२) अेक कृषक ने जूं मारी	२६
३) रज्जा साध्वी ने सचित्त पानी पीया	२७
४) मरीचि का दृष्टांत	३०
५) आर्द्रकुमार का दृष्टांत	३१
६) मेतारज मुनि का दृष्टांत	३५
७) चित्रक और संभूति का दृष्टांत	३८
८) इलाचीपुत्र का दृष्टांत	४१
९) कमलश्री का दृष्टांत	४३
१०) रूपसेन और सुनंदा का दृष्टांत	४६
११) क्रोध की आलोचना न लेने से हुआ नुकसान	५१
१२) लक्ष्मणा साध्वीजी का दृष्टांत	५३
१३) एक थी राजकुमारी	५५
१४) निर्दोष सीताजी पर कलंक क्यों आया?	६१
१५) हरिश्चन्द्र को श्मशान में क्यों रहना पड़ा?	७३
१६) आलोचना न लेने से दुखी बने श्रीपाल राजा	७५
१७) चोरी की सजा और देवकी माता	७६
१८) ढंढण कुमार और अंतराय	७७
१९) द्रौपदी को पांच पति मिले	७९
२०) ईर्ष्या की आलोचना न ली	८१
२१) अंजना सुंदरी दुःखी क्यों हुई?	८२
२२) राणी कुंतला	८३
२३) भगवान महावीरस्वामी के जीव ने प्रायश्चित न लिया तो	८४
२४) हरिकेशीबल उत्पन्न हुए चंडाल कुल में	८४
२५) कलावती की कलाईयां छेद दी गई	८६
२६) अंडे लिये हाथ में	८७
२७) देवानंदा के गर्भ का अपहरण क्यों हुआ?	८८
२८) ज्ञान की विराधना की आलोचना नहीं ली	८८
२९) देवद्रव्य की आलोचना न ली	८९
१०) आलोचना से बने चमकते सितारे	९०
१) कामलक्ष्मी का दृष्टांत	९०
२) पुष्पचूला का दृष्टांत	९४
३) नमो नमो स्कंधक महामुनि	९७
४) अनणिक कुमार का दृष्टांत	९८
११) प्रायश्चित की ताकत	९९
१२) प्रश्नोत्तर	९९
१३) आलोचना कैसे लिखनी चाहिये?	१००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक भव्य आत्मा की आत्मकथा!

गुरुदेव ! आपके पास आया हूँ, महान पापी हूँ, अधम हूँ। मेरे जीवन में मैंने कौन-कौन से पाप नहीं किये हैं? यह एक प्रश्न हैं। आज आपकी हृदयवेधक वाणी से वे पाप मुझे खून के कण-कण में व शरीर के रोम-रोम में काँटों की तरह चुभ रहे हैं। गुरु भगवंत! इन दुष्कृत्यों का बोझा ढ़ोए हुए, भवोभव में भटकते रहना, अनेक प्रकार की वेदनाएँ सहन करना, वापस नया पाप करना और बार बार भटकना! निर्विण्ण हो रही है चेतना इस श्रृंखला से!

गुरुदेव ! काँप उठी है अन्तर्चेतना, व्याकुल हो गया है मन, अब तक पाप की गंदी गलियों में भटकने से। ओह! अनन्त काल से इस आत्मा ने और किया भी क्या है, पापों के संचय के सिवाय? उनके गाढ़ संस्कारों ने मुझे इस प्रकार बांध रखा है कि छूटने की बात तो दूर, परन्तु इस जन्म में भी मुझे पशुतुल्य बना दिया है।

धन्य हैं वे पुरुष! जिनका जीवन बाल्यकाल से ही निष्कलंक रहा है। लेकिन अफसोस! पाप के गाढ संस्कारों ने तो मुझे बाल्यकाल से ही पाप करने में प्रवीण बना दिया है। ४-५ वर्ष की उम्र में ही रसना के अधीन होकर घर में पीपरमेंट - चोकलेट की चोरी ने कलंकित जीवन का श्रीगणेश किया। खाने की लालसा बढ़ने पर दूसरों के घरों में.... अरे! मंदिर या कोई धर्मस्थान में जाकर पैसे की चोरी कर गुप्त रीति से नई नई स्वादिष्ट वस्तुएँ खाने लगा। अरे ! कई बार तो पकड़ा भी गया। लेकिन वहाँ भी छुटकारे में असत्य सहायक बनने के कारण मायामृषावाद मुझे अतिप्रिय हो गया। फिर तो पूछना ही क्या? अनेक प्रकार की कपटजाल बिछाने में, मैं निपुण हो गया।

एक बार कौतुकवृत्ति के कारण गुप्त रीति से, घर के बड़ी उम्रवाले व्यक्तियों के परस्पर अंग-स्पर्श को देखकर मन उसकी ओर आकर्षित हुआ! छोटे-छोटे निर्दोष बालक-बालिकाओं के साथ खेलकूद में स्पर्श के पाप का स्थान मुझे मिल गया। फिर तो केरम खेलें या खो-खो खेलें, वासनापोषण का कार्य ही मुख्य बन गया। कोई न कोई निमित्त प्राप्त कर विजातीय के अंगोपांग के स्पर्श की धुन लग गई। बाहरी दिखावा तो हास-उपहास का रहता, परंतु अंतर में तो वासना की अग्नि प्रज्वलित रहती।

क्या कहूं गुरुदेव! कहने की हिम्मत नहीं है। किन्तु व्याकुल हो गया हूँ पापों की इस हारमाला से ! आपकी वाणी से यह बोध हुआ है कि यदि गंदी गटर में से कूड़ा-करकट नहीं निकाला जाएगा, तो आराधना का इत्र भी गंदगी में बदल जाएगा। केन्सर की गांठ का ऑपरेशन करवा दिया जाए, तो लोग बच जाते हैं और जो छोटा-सा काँटा न निकाला जाए, तो धीरे-धीरे पूरे शरीर में मवाद हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाने से मरना पड़ता है। अतः कहने के सिवाय मन शांत नहीं होगा। लज्जा तो छोड़नी ही पड़ेगी, अन्यथा पापों से ज्यादा भारी बनूँगा। लज्जा रखूं भी क्यों? रे जीव! पाप करने में तुझे लज्जा नहीं आई, तो अब आलोचना लेने में लज्जा क्यों रखनी ?

८-९ वर्ष की उम्र में एक कव्यक्ति से सम्पर्क हो गया। वह मुझे मुफ्त में सिनेमा में ले गया। मुफ्त सिनेमा के इन दृश्यों से मेरे में स्त्रियों की ओर निर्लज्जतापूर्वक देखने की आदत पड़ने लगी। फिर तो रास्ते में चलते-चलते भी स्त्रियों को देखने की आदत पड़ गयी और उसमें पकड़े जाने का भय भी बढ़ने लगा। इस प्रकार मन के पापों का गुणाकार होने लगा। जरा सी नज़र स्त्री पर पड़ जाए, तो उस पिक्चर में उस एक्टरने ऐसा किया था, वैसा किया था। मैं भी ऐसा करुँ, वैसा करुँ ! इस प्रकार के पाप विचार घर करने लगे। बगीचे में घूमनें-फिरने जाऊँ, तो भी वहाँ पर युगलों पर दृष्टि पड़े बिना नहीं रहती, क्या होगा तंदुलिया मत्स्य जैसी मेरी आत्मा का !

उस कुव्यक्ति ने मेरे भोलेपन का लाभ उठाकर मुझसे हस्त मैथुन जैसा कुकर्म भी करवाया। मुझे भी उसमें कृत्रिम आनंद आया। एकांत में यह पाप बारबार करने लगा। बस ! मेरा पतन शुरु हो गया। शरीर क्षीण होने लगा। कृत्रिम शक्ति लाने के लिए भिन्न-भिन्न विज्ञापनों के पीछे अपने समय व पैसे का दुर्व्यय करने लगा। उसमें भी कुछ उत्तेजक दवाएँ तो गिरते पर प्रहार ज़ैसी बन गई! परंतु किसे कहूँ? अब तो आगे बढ़कर मेरे हाथ विजातीय के संयोग से मलिन होने लगे। मैंने कितनों के हाथ बिगाड़े, कितनों के मुँह। इन पापों के पोषण के लिए परस्पर जूठी की हुई भेल पूड़ी, पांऊभाजी खाना, जूठें सोडा लेमन पीना वगैरह भी प्रारम्भ कर दिया। जमीनकंद मिश्रित समोसे, कचौड़ी, वेफर्स आदि खाने की आदत भी कुसंग से बढ़ने लगी। १४-१५ वर्ष की उम्र में सहशिक्षण और खेलकूद में स्पर्शजन्य पापों को तो मानो अपना जाल फैलाने के लिए बड़ा मैदान मिल गया।

होस्टल और तीर्थ की धर्मशालाओं को भी मैंने पापस्थान बना दिये। क्या कहूँ गुरुदेव! घर के गुरुजनों को तो इसकी गंध भी न आई। उन्हें क्या पता कि जेबखर्च के लिए दिए हुए पैसों का कितना दुरुपयोग हो रहा है? १-२ घंटे स्कूल में एटेन्ड कर दूसरे तीन घंटे किस टॉकिज़ में या गार्डन में गया! इसकी कल्पना भी उन्हें किस प्रकार हो सकती थी? स्कूल जीवन में ही पंचेन्द्रिय जीव का घात प्रारंभ हो गया। विज्ञान की प्रयोगशाला में एक दिन शिक्षक ने मेंढ़क का डिसेक्शन (विछेदीकरण) करके बताया। मुझे तो चक्कर आने लगे ! यह क्या? जीन्दे जीव को चीर कर मार डालना ! कैसा नृशंस कार्य ! मेरे मित्र ने मुझे झूठी तसल्ली दी। दोस्त ! इतने से क्या घबराता है? हमें तो आगे चलकर बायोलोजी का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्टुडेन्ट बनना है। इस प्रकार की प्रेरणा से हिंसा के प्रति मेरी घृणा कम होने लगी। मैंने भी एक कातिल दिन, मेंढ़क को उल्टा कर चारों पैरों में कीलें लगा दी। अरर ! गुरुदेव, कहा नहीं जाता ! उस मेंढ़क को कितनी घोर पीड़ा हुई होगी ! इस बात का विचार तक मैंने नहीं किया। मेरे स्वार्थान्ध हृदय में दया की एक किरण भी न प्रकटी। कठोर हृदयी मैंने निर्दयी होकर मेंढ़क का हृदय चीर डाला। अरर ! यह क्या हो गया? चीरने में एक भाग जरा-सा आड़ा चीर गया। मैंने दूसरे मेंढ़क को चीरा। फिर तो पैसे देकर मेंढ़क ले आता और चीरता रहता। ओह ! मेरे जीवन में कितने ही पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या हो गई ! कैसे छूटूंगा इस पापराशि से? सुना है कि एक जूं मारने वाले को सात बार फांसी पर लटकना पड़ा, तो मुझे कितनी बार फाँसी की सजा भोगनी पड़ेगी? मानो मेरी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई थी। उन्मत्त के समान कार्याकार्य को नहीं समझते हुए मैंने कई पाप कर डाले।

गुरुदेव! त्राहिमाम्, त्राहिमाम्। अब तो आप ही आधार हैं। मेरे स्कूल जीवन में १६ वर्ष की उम्र में एक और कलंकित घटना बन गयी। वह घटना याद आते ही मुझे चक्कर आ जाते हैं। मैं लेड़ीज़ टीचर के वहाँ ट्युशन के लिये जाता था। एक दिन उनकी वासना भड़की और उन्होंने मुझे बाँहो में ले लिया। चढ़ती जवानी मे मैं भी कंट्रोल न कर पाया, भयानक पाप में फँस गया। सामने से अनुकूलताएं मिलती हो, तब कोई विरल सत्त्वशाली आत्मा ही बच सकती है ! मैंने मेरा जीवन काजल से भी ज्यादा काला बना दिया। अरर! विद्यागुरु के साथ दुराचार ! अरर..... देह सम्बन्ध ! क्या होगा इस पापी आत्मा का?

करुणानिधि! फिर मैंने कॉलेज लाइफ में प्रवेश किया। इस समय मेरी हिंसा वृत्ति दिन-दूगुनी रात-चौगुनी प्रगति करने लगी परंतु अंतिम परीक्षा में प्रतिशत कम आने से बॉयोलोजी में एड़मिशन न मिलने से मैंने कॉमर्स की लाईन पकड़ी।

यहां तो मोहराजा का अट्टहास और भी विकराल हो उठा। घरवाले समझते थे कि पढ़ने जाता है, परन्तु एकाध पीरियड एटेन्ड कर गर्लफ्रेन्ड के साथ पिक्चर देखने पहुँच जाता। मोह ने एक नई पापवृत्ति खड़ी कर दी कि गर्लफ्रेन्ड हो, तो ही बुद्धिशाली कहलाउँगा। गुरुजनों की तरफ से पैसे की छूट का खूब दुरुपयोग करने लगा। इस प्रकार की कुप्रवृत्तियों से अनेक विजातीय व्यक्तियों को फँसाने का प्रयत्न करने लगा। सिस्टर कहकर लिफ्ट देने के बहाने विजातीय व्यक्ति को स्कूटर पर घुमा लाता और अपनी ओर आकर्षण बढ़ाने के दूसरे भी प्रयत्न करता रहता। कम्प्युटर का शिक्षण प्राप्त करके INTERNET CHAT स्कीम का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुरुपयोग कर अपरिचित लड़कीओं को फँसाने के धंधे किये। अरे ! बहिन कहकर सम्बोधित करता और वासना का शिकार बना कर ही रहता। गुरु भगवंत, पैसे और परिवार की आज़ादी ने तो मेरे कौमार्य को भी कलंकित कर दिया। कम्प्युटर में नयी-नयी देश-विदेश की फाईलें खोलकर, उनमें अंगप्रदर्शन को देखकर कामवासना को बढ़ाने के भरपूर प्रयत्न किये। क्या कहूँ? मन भर गया है। जीभ ही नहीं चलती है, मेरे ज़ालिम पाप कैसे छूटेंगे? मेरी क्या गति होगी? मामा, काका, किसी का भी घर मैंने नहीं छोड़ा है। किसी की भी लड़की को देखते ही उसको वासना का शिकार बनाने का ही प्रयत्न करता। सब को कलंकित कर दिया है। इससे ज्यादा कौन-सा कुकर्म हो सकता है? नाथ ! इस पापी आत्मा को धरती जगह दे, तो अंदर समा जाऊँ ! शर्म के कारण मुँह भी ऊँचा नहीं उठता है। मैं मुँह दिखाने के लायक भी नहीं हूँ। आत्महत्या एक महापाप है, यह समझता हूँ। अतः आलोचना से पापहत्या करनी है। सुनिए गुरुभगवंत ! मेरी पाप कथा, वयस्क फिल्मों को देखकर तो वासना ने मर्यादा ही तोड़ दी। पड़ोस में रहने वाली मासूम बालाओं पर अवसर देखकर क्रूर प्रवृत्ति शुरू कर दी। उनकी चीखों को दबाकर मैंने पाप की पोटली बाँध ली। उनके जीवन पर काला धब्बा लगा दिया। इश्क जात-कुजात नहीं देखता, इस उक्ति को मैं चरितार्थ करने लगा। अंगस्पर्श और स्वअंगप्रदर्शन में तो कोई शरम न रही। इन दुष्कृत्यों ने तो मर्यादा ही छोड़ दी।

एक बार शिकार हाथ में आने के बाद, फिर वह कहीं चला न जाएँ; तदर्थ पैसे बहाना-उन्हें खुश करना इत्यादि करने के लिए चोरी करने में भी कुछ बाकी न रखा। वासनापूर्ति के लिए कुछ बड़ी चोरियाँ भी अब शुरू हो गई, क्योंकि संबंधित व्यक्तियों को खुश करने के लिए चोरी एक फर्ज़ बन गया। फिर तो मैं लोटरी, मटका वगैरह जुए की प्रवृत्ति में कूद पड़ा। क्या कहूँ, मेरे जीवन की आत्मव्यथा? काली स्याही से श्याम बन गई है मेरे जीवन की कोरी किताब। वयस्क होने पर कानूनी सलाह लेकर घर से भाग कर कोर्ट में शादी करने का प्लान भी बना लिया। परंतु २२-२३ वर्ष की उम्र में मेरी सगाई हो गई। यह केवल बाह्य व्यवहार मात्र था। अंदर तो मैं पापों से सम्पूर्ण रीति से सड़े हुए टमाटर की तरह निःसत्त्व बन गया था। मैंने कितने ही व्यक्तियों का शील सदाचार खंडित कर दिया था! सगाई होने पर मानो अब तो प्रेमपत्र लिखने का मुझे अधिकार मिल गया। अरे क्या कहूँ गुरुदेव? प्रेमपत्रों की बिभत्स यात्रा शुरू हो गई। मेरे परिणाम (विचार) कलुषित होने लगे। अरे ! अनेक बार साथ में घूमने के बहाने जाकर विवाह से पूर्व ही पति-पत्नी के कृत्रिम और क्षणजीवी सुख का अनुभव करने का महान् पाप भी कर लिया। सामने के व्यक्ति की मेरे प्रति अनुकूलता होने से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरे पाप पानी में डाले हुए तेलबिन्दु के समान विस्तरित होने लगे। किसके साथ कब मिलना? कब किसके साथ रहना? इत्यादि योजनाओं से मेरा दिमाग चिंतातुर रहने लगा। क्या करूँ गुरुदेव ! क्या होगा मेरा? अब निर्लज्ज, कठोर, मर्यादाहीन लोफरों की संगति मुझे खूब अच्छी लगने लगी। उनकी कुसंगति के प्रभाव से मुझे विलासी साहित्य पढ़ने का शौक लग गया। फाइवस्टार होटल तो मानो पापों का घर ही बन गया। विजातीय व्यक्तियों को वहां बुलाकर पैसे के बल पर शील खंडन करने का मानो मैंने अधिकार जमा लिया हो। टॉकिज में बालकनी का टिकट लेकर, अंधकार का लाभ उठाकर विजातीय व्यक्ति के अंग स्पर्श करके विवेक से भ्रष्ट बनता गया। अरे ! एक बार तो पकड़ा भी गया! अपमान भी हुआ। सेंडलों की मार भी खाई। भय से रात्रि में निद्रा भी वैरिणी बन गई। खुश-किस्मत से कुछ छुटकारा हुआ, तो थोड़े दिनों के पश्चात् वही चाल पुनः शुरु हो गई और विद्युत्वेग से पाप वापस शुरु हो गए। विवाह की तैयारियाँ होने लगी। परंतु मैं भयभीत बना रहता। शायद कोई फोटो आदि के प्रमाण देकर विघ्न डाल देगा तो? अन्ततः पापानुबन्धी पुण्य ने पार उतार दिया। परन्तु अब भी ''पर धन पत्थर समान, पर स्त्री मात समान'' यह दृष्टि नहीं आई। रास्ते में चलते-चलते भी दृष्टि जहाँ-तहाँ भटकने लगी व जिस किसी को भी वासना का शिकार बनाने लगा। अरे! मैंने यह क्या किया? ''मरणं बिन्दुपातेन'' अर्थात् वीर्य के एक बिन्दु के पतन से मरण समझना, यह आध्यात्मिक सूझ बूझ ही मानो चली गयी। ओह गुरुवर्य! एक महीने के भोजन से एक किलो खून बनता है और उसमें से केवल १० ग्राम वीर्य बनता है। ऐसा शारीरिक विज्ञान भी भूल गया। अरे गुरुदेव ! एक बार अब्रह्म के सेवन से नौ लाख जीवों की हत्या होती है। जीवहत्या का ऐसा घोर कत्लखाना बंद करना चाहिए, ऐसे धार्मिक विचार भी नहीं आए। अरर ! परलोक का विचार भी नहीं किया कि इस प्रकार की हिंसा से मेरा क्या होगा?

अरे गुरुदेव। वासनाएँ आकाश के समान अनंत हैं, उन्हें ज्ञान से उपशमाने का कोई प्रयत्न नहीं किया, उसकी पूर्ति न होने से विकार रूपी समुद्र में ज्वार आने लगा और एक काला दिन ऐसा आया कि एक कुमित्र की संमति मिलने पर पत्नी ट्रान्सफर करने का निश्चय किया। वासना के फौलादी पंजे में फँसकर मैंने शील सदाचार को ताक पर रख दिया और ट्रान्सफर का निर्णय कर लिया। सद्भाग्य से सदाचारिणी पत्नी ने यह बात नहीं स्वीकारी। उसे भ्रमित करने के लिए मैंने रामायण के प्रभव, सुमित्र और वनमाला आदि के दृष्टांत समझाए कि पति देव के समान होता है, उसकी बातें माननी चाहिये। अन्त में उसने हिम्मत कर शील की रक्षा के लिए पुलिस चौकी पर जाकर शिकायत की। अतः मुझे पुलिस स्टेशन जाना पड़ा। वहाँ से जैसे-तैसे छूट गया। उसके बाद मेरी अक्कल कुछ ठिकाने आई। आज पत्नी मुझे कल्याणमित्र लगती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु उस समय उसे शत्रु मान कर मैंने उसकी पिटाई भी की थी। इन भयंकर पाप विचारों और कार्यों से मेरी आत्मा ने कैसे दारुण कर्म बाँधे होंगे? मुझे लगता है कि ऐसे पापों की सजा कदाचित् मेरे इस जीवन में ही हो जाएगी, क्योंकि तीव्र भाव से किए हुए पाप उसी भव में फल देते हैं। गुरुदेव, ये पाप उदय में आए, उसके पूर्व आप कृपालु प्रायश्चित देकर मुझे शुद्ध बना दीजिए।

ये पाप मुझे याद आते हैं और मैं अपनी आत्मा को धिक्कारता हूँ। अरे निर्लज्ज जीव ! तूने यह क्या कर डाला? अरे गुरुदेव! यह पृथ्वी यदि जगह दे, तो अंदर समा जाऊँ! मैं मुँह बताने लायक भी नहीं हूँ। क्या करुँ गुरुदेव! इन वासनाओं को मैंने ज्ञानगर्भित वैराग्य से समाप्त नहीं की। इन वासनाओं की पूर्ति के लिए मैं हड़ताल, लूट-पाट वगैरह में आगे बढ़ने लगा।

लोग मेरे जीवन पर थूकेंगे। शतशः धिक्कार और नफ़रत की नज़र से देखेंगे। अरर! मेरा क्या होगा? गहराई से ऐसा कोई विचार मैंने नहीं किया। आज मुझे अपने दुष्कृत्यों पर फूट-फूट कर रोना आता है। नौकरी में अफसर का पद मिल गया। इसलिए बोस बनकर अपने हाथ के नीचे काम करने वाली महिलाओं को भी गैरास्ते पर चढ़ा दी। प्रलोभन से मेरी आज्ञा में रहे, और वासना के शिकार बनी रहे, वैसी निःसत्त्व बना दी। मेरा यौवन फूल कुम्हला गया। अब तो मैं निराधार बन गया हूँ। क्या करुं? इतना ही नहीं। कुलीन घर में रहकर देवर-भाभी के पवित्र संबंध को भी दूषित बना दिया। अरे ! शरीर के सुख के लिये उच्च कुल के ऊपर काला धब्बा लगा दिया। ओहो ! मैंने यह क्या किया ? आहारादि वासना में आगे बढ़कर शारीरिक विभूषा और स्वादिष्ट भोजन के पापों से मैं ऐसा दब गया हूँ कि भवांतर में मेरी धज्जियाँ उड़ जाएगी।

क्या कहूँ गुरुदेव! पापों को धोने के लिए उपाश्रय में भी न गया। अरे! उपाश्रय में जानेवालों को भी भगत कहकर उनकी खिल्ली उड़ाई। पर्युषण जैसे महापर्व में भी संवत्सरी के दिन बाहर से उपवास का दिखावा कर गुप्तरीति से होटल में खाने पर टूट पड़ा। प्रतिक्रमण में मज़ाक और ऊधम के सिवाय कुछ भी नहीं किया। उपवास में टाइम पास करने के बहाने रात को घूमने निकला। विकार से जलती आँखों द्वारा कितने पापों का बंध किया होगा? सिनेमा के गीतों से मन को वासित करके उसकी धुन में पाप की कितनी लपेटों से आत्मा को लपेट दिया होगा?

दुराचार की दुर्गंध को ढँकनेवाले मेकअप के सुगंधित साधनों का उपयोग करके शरीर को सुंदर दिखाने का प्रयत्न किया। परन्तु हाय ! सब निष्फल गये। मेरे शरीर में रोगों ने अपना कब्जा जमा लिया। मैं दवाओं का शिकार बन गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसके बाद व्यापार शुरु किया, तो व्यापार में भी पापानुबंधी पुण्य ने साथ दिया और छप्पर फाड़ कर पैसा दुकान में बरसने लगा। अब पाप करने में मां-बाप अर्गला के समान भासित होने लगे। अतः उन पर तिरस्कार, नफ़रत व अपमान की वर्षा शुरू कर दी। अहो! उपकारियों के प्रति कृतज्ञ भावना के बदले कृतघ्न बन गया। पिटाई कर उनकों धक्का देकर घर में से बाहर निकाल दिया। रहने के लिए उन्हें छोटी-सी झोपड़ी दे दी। उन्हें अलग कर मैं मौज-मजे से रहने लगा। अब तो मोह ने और भी जोर पकड़ा। एक तरफ जवानी और दूसरी ओर पैसे की सत्ता अर्थात् कुछ भी कमी न रही। नौकर और दूसरी गरीबी की शिकार बनी हुई महिलायें मेरी वासना की हुताशन में भस्मसात् बन गयी। अरे ! मैं तो पागल ही बन गया! मानो यही स्वर्ग है ! मुझे क्या मालूम था कि इस मौज-मजे की वज़ह से असंख्य वर्ष की कितनी भयंकर सजा होगी? वासना के अतिरिक्त टेक्स बचाने के लिए अफसरों के साथ घूमने फिरने जाते समय शराब और शेरे पंजाब होटलो में मांसाहारी भोजन का भी स्वाद लिया।

क्या कहूँ गुरुदेव? मेरी काली आत्मकथा। अंडे का आमलेट, चीकन का स्वाद भी मेरी इस जीभ ने चख लिया। अरर! मैंने यह क्या किया? पंचेन्द्रिय की हत्या! अरे! मेरा क्या होगा? नरक सिवाय मुझे अन्य गति नहीं मिलेगी। ऐसी मेरी करतूते हैं। मेरे जीवन में अनेक पापों ने अपना डेरा डाल दिया। मुझे इसका भान भी न रहा। ''बबूल के वृक्ष बोनेवाले को काँटे ही मिलेंगे, आम कभी नहीं''-इस सिद्धान्त को तो मैं बिल्कुल भूल ही गया। मानसिक आधि, शारीरिक व्याधि और बाह्य उपाधियों ने मुझे चारों ओर से घेर लिया। मानो मेरा नूर ही खो गया। तेज नष्ट हो गया। मानो मैं पृथ्वी पर कुचल दिया गया। सर्वनाश की भयंकर खाई के किनारे पर खड़ा हो गया। अब भी इस बात का स्मरण करते हुए आँखों में अंधेरा छा जाता है।

पत्नी का यौवन टिकाने के प्रलोभन से और निराबाध मौज-मजे से घूमने-फिरने के शौक के कारण गर्भपात करवाकर पंचेन्द्रिय जीवो की हत्या करवाई। वात्सल्यमय माता बनाने के बदले मेरी लालसाओं ने पत्नी को कोमल, निर्दोष, असहाय, अशरण ऐसे मेरे ही खून के अंश से बने हुए बालकों की नृशंस राक्षसी हत्यारी बना दी। अरे! स्व-बालकों को मारने की नृशंसता तो शायद पशुओं में भी नहीं होती है। मेरी वासना की वाइरस बीमारी आस-पास के व्यक्तियों को अपनी चपेट में लेने लगी। यह सब याद आने पर चीख निकलती है कि हे गुरुदेव! मेरा क्या होगा?

एक बार नसीब ने साथ दिया और कॉलेज में प्रॉफेसर की नौकरी मिल गयी। उसमें एक विद्यार्थिनी मेरे पास ट्युशन के लिये आती थी। मेरी पत्नी को दो-चार दिन के लिये बाहर जाना हुआ। ट्युशन के बहाने से एकान्त का मैदान मिल गया। वासना का शिकार बनकर मेरी आत्मा विद्यागुरु के स्थान पर शैतान बन गई। गुरु-शिष्य के पवित्र संबंध को मैंने कलंकित कर दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यापार करता हुआ मैं अनीति में इतना आगे बढ़ा कि फर्जी बिल और डुप्लीकेट हिसाब लिखना, तो मेरे लिए बायें हाथ का खेल बन गया। माल बताना दूसरा और देना दूसरा, इसमें मैं अपनी चतुराई मानने लगा। दस के बदले ग्यारह नोट तो अनेक बार तिजोरी में डाल दिए थे। मेरी धन-लोलुपता तो मम्मण शेठ के साथ स्पर्धा करने लगी। अरे गुरुदेव! अपेक्षा से तो उसकी धन-लालसा मेरी अपेक्षा तुच्छ कही जा सकती है। दान धर्म के साथ तो मानो मुझे वैर ही था। धिक्कार हो मेरे इस विषय-संरक्षानुबंधी रौद्र ध्यान को ! मेरी आंतरिक महत्ताएँ तो इतनी तीव्र थी कि धनप्राप्ति में कोई आड़ा आया, तो गुंडों के द्वारा उसका सफाया कराने की नीच भावना भी मुझ में जोर पकड़ रही थी।

इन कुकर्मों का दारूण विपाक मुझे ही भोगना पड़ेगा। यह विचार मुझे स्वप्न में भी नहीं आया। क्या करूँ गुरुदेव! मेरी आत्मा कहाँ फेंक दी जाएगी? अरे किस क्रूर रीति से मेरी आत्मा पीसी जायेगी? उसका विचार भी न आया। निरंतर धन, धन और धन का रटन चलता था। कितने ही सज्जनों का विश्वासघात भी धन के लिए किया। धन प्राप्ति के लिए न देखा दिन, न देखी रात।

नरक में ले जाने वाला रात्रि-भोजन का पाप भी इस धन की लालसा ने करवाया। क्या करूँ गुरुदेव? कर्म से मैला बना हुआ हृदय चौधार आँसुओं के सिवाय धुले ऐसा नहीं लगता। गुरुदेव! आप कहते हैं रो नहीं। रोऊँ नहीं तो क्या करूँ? वो आँसू रूककर फिर आ जाते हैं। गुरु भगवंत, आप प्रायश्चित रूपी साबुन मेरे हृदय पर लगाइए, ताकि मेरा हृदय स्वच्छ निर्मल बन जाए।

छोटी-छोटी बातों में भी क्रोध से प्रज्वलित होकर दूसरों को तो क्या पत्नी और बच्चों को भी मारने में कुछ कमी नहीं रखी। आज तक कभी भाव से तो मिच्छामि दुक्कडं दिया ही नहीं और अगर देना भी पड़ा हो, तो वह भी बाहर से अच्छा दिखाने के लिये दिया, भीतर तो वर्षों तक वैर की गाँठ बनाये रखी और जान से मार डालने के मनसूबे भी बहुत किये। पड़ोसियों को गालियाँ देने में पीछे मुड़कर देखा भी नहीं। क्या होगा गुरुदेव? एक अपशब्द से चंद्रा को कलाई कटवानी पड़ी और सर्ग को शूली पर चढ़ना पड़ा, तो मेरी क्या गति होगी? गुरुदेव! अहंकार का तो मैं पुतला था। मेरे सामने दूसरों का नाम ले लिया गया हो और मेरा नाम भूल गए हो, तो मेरे दिमाग का पारा ऊँचे चढ़े बिना नहीं रहता था। पारा चढ़ने के बाद वह चाहे धर्मकार्य क्यों न हो? उसे तोड़े बिना नहीं रहता। ओह गुरुवर! अब तो हद हो गई मेरे काले कर्मों की! माया करके दूसरों को ठगने में बुद्धि का चातुर्य समझता था। मायाजाल करने पर भी मैं पकड़ा नहीं गया? उसका मुझे गौरव था। वास्तव में मैंने अपनी आत्मा को ही ठगी है। गुरुदेव! अब क्या करूँ, जिससे मेरा पाप धुल जाए? बस, मुझे तो यही लगता है कि सभी कुकर्मों का आपसे प्रायश्चित लेकर शुद्ध बन जाऊँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भविष्य की मनोव्यथा

गुरुदेव! मुझे जब अपने जीवन की काली किताब याद आती है, तब रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अरे जीव! तेरा क्या होगा? कण जितने सुख के लिए मण जितने पाप किये हैं, उनसे टन जितना दुःख आएगा, उन्हें तू किस तरह सहन करेगा? गुरुदेव, जरा-सी गर्मी पड़ती है, तो आकुल-व्याकुल होकर पंखे या एयरकंडिशन की हवा खाने के लिये दौड़ता हूँ, तो फिर नरक की भयंकर भट्ठियों की असह्य गर्मी को कैसे बर्दाश्त करूँगा? जहाँ लोहा क्षणभर में पिघल कर पानी जैसा प्रवाही बन जाता है, परमाधामी भट्ठी के ऊपर मुझे भुट्टे की तरह सेकेंगे, तब गर्मी कैसे सहन कर सकूँगा? तड़प-तड़प कर आकुल-व्याकुल बने मन को आश्वासन देनेवाले वचनों के बदले परमाधामी के कड़वे वचन सहन करने पड़ेंगे, ''ले, अब कर मज़ा।''

जब पूज्य गुरुदेव ने कहा था कि मांसाहार छोड़ दे। जीवों को पीड़ा मत दे। तब कहता था, ''किसने देखा है परलोक? मछली वगैरह प्राणियों को तल कर व अंडे वगैरह को केले के समान उबाल कर खाता था, तब क्या तुझे भान नहीं था? ले, अब कर मज़ा।'' ऐसा कहकर परमाधामी भीषण ज्वालाओं से कराल जैसी भट्ठी पर चढ़ाई हुई कढ़ाईयों में तल देंगे, मुँह में जस्त का गरमा-गरम रस डालेंगे और तब त्राहिमाम्-त्राहिमाम् (मुझे बचाओ) की पुकार कोई नहीं सुनेगा, तब मेरा क्या होगा? इतना ही नहीं, गुरुदेव! ऊपर से परमाधामी सुनाएँगें-''दूसरों की निंदा करने में आनंद आता था न! ले, अब कर मजा।'' तेरी जीभ खींच लेता हूँ। सोडा लेमन, बीयर, व्हिस्की आदि अभक्ष्य पान के सेवन में आनंद आता था न? अब तृषा लगी है न, तो ले ये गरमागरम जस्त का रस। परस्त्रियों के चुंबन और आलिंगन तुझे मीठे लगते थे न, तो ले इन गरमागरम लोहे की पुतलियों के साथ कर चुंबन और आलिंगन। जीवों को चीर कर अभक्ष्य भोजन करता था न, ले, तेरे टुकड़े टुकड़े कर देता हूँ।'' ऐसा कहकर आम की फाँक की तरह शरीर के टुकड़े टुकड़े कर देंगे। वह मुझसे किस प्रकार सहन होगा?

ओह गुरुवर्य ! और कहेंगे कि, थोड़ी-सी दुर्गंध आती थी, तो नाक बंद कर डी.डी.टी. छिड़काने के लिए तैयार हो जाता था, अब भयंकर दुर्गंधमय वातावरण और वैतरणी नदी में तुझे असंख्यात वर्ष तक मजबूरी से रहना पड़ेगा। ''जरा-सी भी कुरूपता देखनी अच्छी नहीं लगती थी, उसके प्रति तिरस्कार और अपमान बरसाता था। अब नरक में असंख्यात वर्षों तक कुरूप जीवों को देखते रहना पड़ेगा। खुद के दोष जरा भी सुनने अच्छे नहीं लगते थे और दूसरों के दोष जानने में आनंद आता था, तो अब तू सुनते रह अपने दोष और अपराधों को । तू अपराधों को नहीं सुनेगा और भाग जाने का प्रयत्न करेगा, तो पटक-पटक कर चूर-चूर कर दूँगा।'' परमाधामियों के ऐसे कठोर वचन कैसे सहन करूँगा? यहाँ तो सब्जी व दाल में नमक-मिर्च जरा-सी भी कम हो जाए, तो रौद्र रूप धारण कर लेता हूँ, तो फिर नरक में बिभत्स और दुर्गंधमय नीरस आहार कैसे ग्रहण करूँगा? गुरुदेव ! मेरी आत्मा पाप से कंपित हो उठी है। ओह! कल्याणमित्र पूज्य गुरुदेव! गुमराह बने हुए मुझे कोई सन्मार्ग बताइए। शीघ्र बताइए। क्या करूँ मैं?

गुरुदेवश्री का आश्वासन

अरे पुण्यशाली मानव! तू वास्तव में धन्यवाद का पात्र है। पाप हो जाना, कोई आश्चर्य नहीं है। मोहनीय कर्म के उदय से किसने कौन-से पाप नहीं किये? क्या मोह ने तीर्थंकर की आत्मा को भी छोड़ा है? क्या उन्होंने अपने पूर्व जीवन में भयंकर पाप नहीं किये? क्या उन पापों से उन्हें सातवी नरक तक नहीं जाना पड़ा? परंतु जीवन की काली-श्याम किताब को धोकर तुझे उज्जवल बनने का मनोरथ हुआ हैं। अतः तू धन्यवाद का पात्र है। तू तो काली किताब का एक-एक पन्ना खोलकर कालिमा को धो रहा है। अतः तू विशेष रूप से धन्यवाद का पात्र है। बालक जैसी सरलता से एक एक पाप निष्कपट भाव से प्रगट कर दे। अरे! आत्मा पर से झिड़क दे इन पापों को।

हे भाग्यवंत! तेरे द्वारा सरलतापूर्वक हो रही आलोचना से तेरे प्रति मेरे हृदय में वात्सल्य का सागर उछल रहा है, क्योंकि शास्त्रों में कहा है कि आलोचना लेनेवाला ही वास्तव में आराधक है। हृदय रुपी गंदी गटर में आराधना का इत्र डालने से क्या सुगंध आ सकती है? नहीं। पाप, शल्य व दोष तो मुर्दे के समान हैं। मुर्दे पर कितने ही फूल चढ़ाये जायें, थोड़ी देर के लिए सुगंध आती रहेगी, परंतु अन्दर तो बदबू बढ़ती ही रहेगी। पाप शल्य व दोषों की आलोचना न लेने से थोड़ी देर के लिए आनंद आ सकता है, परंतु भावों की अभिवृद्धि तो मुर्दे की तरह दोषों को आत्मा में से बाहर फेंकने से ही होगी। तूने आज मेरे सामने हृदय खोलकर आलोचना कही, जिससे तेरा हृदय साफ हो गया है, अब तेरा जीवन आराधना की सुगंध से महक उठेगा। अतः तू आज धन्यवाद का पात्र है, परन्तु याद रखना, भूलना मत। एक भी पाप को कहने में गलती मत करना, शरम मत रखना। हृदय में एक भी शल्य मत रखना। तूं वास्तव में भारहीन हो जायेगा। तेरा सिर हल्का हो जायेगा। तेरा हृदय स्वच्छ हो जायेगा। सिर पर से सारा बोझ उतर जायेगा।

हे देवानुप्रिय! तेरी आलोचना सुनकर मैं तो तेरी पीठ थपथपाता हुआ धन्यवाद दे रहा हूँ। वस्तुतः तूने अद्भुत पराक्रम किया है। खूब हिम्मत रखकर पापशल्यों को जड़मूल से उखाड़ फेंके हैं। अद्भुत साधना की है, अभ्यंतर तप का आस्वाद लिया है। किन शब्दों में तेरे पुरुषार्थ की प्रशंसा करूँ ? मुझे ऐसे शब्द ही नहीं मिल रहे हैं। अरे! मेरा शब्दकोष भी वामन हो गया है! अब दिल में एक भी पापरूपी काँटा मत रखना, अन्यथा जैसे अश्वपालक के घोड़े के पैर में काँटा लग गया था और अश्वपालकने काँटा नहीं निकाला, जिससे पैर में मवाद भर गई और अंत में संपूर्ण पैर कटवाना पड़ा, उसी प्रकार तू भी अंदर पाप रखकर घोड़े की तरह दुःखी मत होना। तू अंदर किसी भी प्रकार की शर्म मत रखना। मुझ पर दृढ़ विश्वास रखना। जो तूने आलोचना कही है, वह किसी के भी कान तक नहीं जायेगी। मैं मरुँगा, तो मेरे साथ ही आयेगी। उसे मैं हृदय रुपी कब्रिस्तान में गाड़ चुका हूँ। ज्यादा क्या कहूँ? आलोचना का प्रायश्चित देने का अधिकार उसीको है, जो अपरिश्रावी होता हैं अर्थात् आलोचना सुननेवाला और प्रायश्चित देनेवाला ऐसा व्यक्ति होता है, जिसके हृदय से वह बात कभी बाहर न निकले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित देनेवाला गुरु पत्थर के घड़े जैसा होता हैं। जिसमें से एक बूंद भी बाहर न निकल पाये। अतः तू कोई काल्पनिक भय या लज्जा मत रखना। शास्त्रों में ऐसे-ऐसे दृष्टांत आते हैं कि माता और पुत्र, पति-पत्नी जैसे पाप करने वाले जीव आलोचना से शुद्ध हो गये, पति-पत्नी बनकर पाप से भारी बने हुए भाई-बहिन आलोचना के द्वारा शुद्ध हो गये। अरे! उसी भव में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में पहुँच गए।

अरे पुण्यशाली आत्मा ! तू मेरी एक बात सुन ले। महानिशीथ सूत्र में कहा है कि आलोचना लेने के भाव का भी एक ऐसा महाप्रभाव हैं कि आलोचना सुनाते-सुनाते कितने ही महापुरुषों ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। अमुक आत्माओं ने तो आलोचना शुद्धि का इतना प्रायश्चित आया हैं, इतना सुनते ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। आये हुए प्रायश्चित को वहन करते-करते कितने ही आत्माओं ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। ज्यादा तो क्या कहूँ? आलोचना सरलतापूर्वक कह देने की तीव्र उत्कण्ठा से उठकर भवोदधितारक गुरुदेवश्री के पास जाते-जाते बीच में ही कितने ही भव्यात्माओं ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

धन्य हो उन महापुरुषों को! धन्य हो उनकी शुद्ध बनने की उत्कंठा को! तू भी ऐसा ही महापुरुष भविष्य में बनेगा। अरे महात्मन्! तू भी अनेक जीवों का तारणहार बनेगा, क्योंकि तूने अपनी आत्म-भूमिका शुद्ध बना ली हैं। अब यह मुख्य रूप से ध्यान रखना कि सद्गुरु का योग मिलने के पश्चात शुद्ध आलोचना न कही, तो रुक्मिणी आदि के समान अनेक भावी जीवन बिगड़ जाएंगे। तू ऐसा मत मानना कि ''गुरुदेवश्री मुझे हल्का मानेंगे। अरर! बाहर से इतना धर्मी दिखने वाला मानव अंदर से कितना श्याम!'' क्योंकि शास्त्रों के जानकार गुरुदेवश्री ने तो शास्त्र और अनुभव के बल पर तुझ से भी अनेक गुने पापात्माओं का जीवन जाना हैं। वे इस तथ्य को समझे हुए हैं कि पाप करने वाला खराब होने पर भी पाप की आलोचना लेने वाला महान आराधक हैं। पापभीरु आत्मा ही आलोचना लेने के लिए तैयार होती हैं। पापभीरुता यह तो आत्मा का गुण हैं।

ऐसे गुणवाले के प्रति धिक्कार आ जाए, तो
प्रमोदभाव चला जाए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं अपेक्षा से साधुता को
खोकर गुरुदेवश्री कहलानेवाली आत्मा मिथ्यात्व में पहुँच
जाने। अतः ऐसे विचार भी गुरुदेवश्री स्वयं के दिल में कभी आने नहीं देते। इसलिए तू
निःसंकोच होकर आलोचना कह देना, जिससे शुद्ध होकर शीघ्र मोक्ष का भोक्ता हो जाएगा। आलोचना कहनी एक सुकृत
है। सुकृत करनेवाले को गुरुदेवश्री कभी फटकारते नहीं, फटकारे तो सुकृत की अनुमोदना खत्म होकर गुरुदेव को भी अनेक भव करने पड़ते हैं।

रुक्मिणी आदि के उदाहरण जानकर अरे महामानव! तू दिल में तिलतुषमात्र भी पाप मत रखना। तू महान आराधक बनेगा। इसमें कोई संदेह नहीं है।

अरे आराधक आत्मा! पापरूपी अपराध जैसा किया हो, वैसा ही कह देना। जरा-सा भी संकोच मत रखना। कई बार जान बुझकर पाप किया हो, तो कई बार अनजान में भी किया हो, किसी समय किसी की प्रेरणा से भी किया हो, तो किसी समय जबरदस्ती से भी किया हो, कई बार धर्मस्थानों में भी किया हो, कई बार होटलादि में किया हो, कई बार दिन में किया हो, कई बार रात में, कई बार रागभाव से किया हो, अतः उसे करने में आनन्द भी आया हो, कई बार अनिच्छा से या द्वेष से भी करना पड़ा हो, यह सब सरल भाव से कह देना। कहने की हिम्मत न हो अथवा याद न रहे, तो लिख देना। लिखने के पश्चात् ३-४ बार पढ़ लेना। बार-बार याद करके विस्तारपूर्वक लिखने में जरा-सा भी भय रखना मत। शास्त्रों में कहा है कि... **सहसा अण्णाणेण व भीएण व पिल्लिएण वा। वसेणायंकेण व मूढेण व रागदोसेहिं ।।१।। जं किंचि कयमकज्जं उज्जुयं भणई। तं तह आलोएज्जा मायामयविप्पमुक्को ।।२।।**

यकायक, अज्ञान, भय, दबाव, व्यसन, संकट, मूढ़ता व रागद्वेष से जो भी अकार्य किया हो, वह सरलता से मायारहित और अहंकाररहित कह देना चाहिए।

अरे जीव! तू गुनाह करने से डरा नहीं, तो अब आलोचना के समय क्यों डरता है? पाप करते समय शर्म नहीं रखी, तो फिर प्रायश्चित के समय क्यों शर्म रखता है? अरे आत्मन्। आलोचना और प्रायश्चित तो आत्मा के भवोभव सुधार देते हैं। अरे केवलज्ञान तक पहुँचा देते हैं। महान समाधि की ओर ले जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

■ आलोचना का महत्त्व

जंबुदीवे जे हुंति पव्वया, ते चेव हुंति हेमस्स।
दिज्जंति सत्तखित्ते न छुट्टए दिवसपच्छित्तं॥१॥
जंबुदीवे जा हुज्ज वालुआ, ताउ हुंति रयणाइ।
दिज्जंति सत्त खिते, न छुट्टए दिवसपच्छित्तं॥२॥

जंबूद्वीप में जो मेरु वगैरह पर्वत हैं, वे सब सोने के बन जाये अथवा तो जंबूद्वीप में जो बालू है, वह सब रत्नमय बन जायें। वह सोना और रत्न यदि सात क्षेत्र में दान देवें, तो भी पापी जीव इतना शुद्ध नहीं बनता, जितना भावपूर्वक आलोचना करके प्रायश्चित वहनकर शुद्ध बनता है।

आलोयणपरिणओ सम्मं संपट्ठिओ गुरुसगासे।
जइ अंतरावि कालं करेइ आराहओ तहवि॥१॥

ज्यादा तो क्या कहूं? अरे भव्य आत्माओं! जिसने शुद्ध आलोचना कहने के लिये प्रस्थान किया है और प्रायश्चित लेने से पहले वह व्यक्ति बीच में मृत्यु को प्राप्त हो, तो भी वह आराधक बनता है। अशुद्ध आलोचना करने वाला विराधक बनता है। इसलिये आलोचना शुद्ध करनी चाहिये।

■ अशुद्ध आलोचना किसे कहते है?

लज्जा गारवेण बहुस्सुयभयेण वावि दुच्चरियं। जे न कहंति गुरूणं, न हु ते आराहगा हुंति॥१॥

अर्थात् ऐसा अकृत्य कहने में शरम आती है। मैं इतना धर्मी हूँ, अथवा मैं बड़ा हूँ, पाप कहने से मेरी लघुता होगी। इस प्रकार गौरव से या पांडित्य का नाश न हो जाए, इस भय से जो जीव शुद्ध आलोचना नहीं करते, वे वास्तव में आराधक नहीं बनते हैं।

■ अशुद्ध आलोचना लेनेवाले के १० दोष :-

आकंपईत्ता अणुमाणईत्ता, जं दिट्ठं बायरं वा सुहमं वा। छन्न-सद्दक़लयं, वहुजण अवत्त तस्सेवी॥१॥

अर्थात १) आकंप्य याने गुरु की वैयावच्च करके अपने लिये गुरु के मन में हमदर्दी खड़ी करके कहे कि, आप कृपा करके मुझे आलोचना का प्रायश्चित थोड़ा देना। २) उसी तरह गुरु की वैयावच्च करने से ये गुरुमहाराज मुझे थोड़ा दंड देंगे, ऐसा अनुमान करके आलोचना कहे। ३) दूसरो ने जो दोष देखें, उसी की आलोचना कहे, परंतु जो दोष किसीने भी न देखें, उसकी आलोचना न कहे। ४) बड़े दोषों की आलोचना कहे, परंतु छोटे दोषों की उपेक्षा करके आलोचना न कहे। ५) पूछे बिना घासादि लिया हो, ऐसी छोटी-छोटी आलोचना कहे, परंतु बड़ी-बड़ी आलोचना न कहे। गुरु जानेंगे कि जो ऐसी छोटी आलोचनाएँ भी कहता हो, वह बड़ी आलोचना किसलिये छुपाये? इसलिये उसे ऐसी बड़ी आलोचना आई ही नहीं होगी, ऐसा मानकर गुरु उसे शुद्ध माने और खुद का गौरव टिका रहे। उसी तरह खुद का गौरव टिकाने के लिये परिचित गुरु के पास आलोचना न कहकर, अपरिचित गुरु के पास आलोचना कहे। इस तरह आलोचना कहने वाला शुद्ध होने का झूठा संतोष मानता है। ६) छन्न अर्थात् गुरु को बराबर समझ में ही न आये, इस प्रकार अव्यक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

■ आलोचना का प्रायश्चित्त किसे दिया जाए?

आवाज से आलोचना कहे। ७) जहाँ शोर बहुत हो, वहाँ गुरु को ठीक तरह से सुनाई न दे, ऐसे स्थान में आलोचना कहे। ८) आलोचना का प्रायश्चित लेकर बहुत लोगों को सुनायें, जिससे शुद्ध संयमी आत्मा के रूप में खुद का गौरव बढ़े। ९) जो छेदसूत्र पढ़े न हो, ऐसे अगीतार्थ को आलोचना कहे। १०) मुझे धिक्कारेंगे-फटकारेंगे, ऐसे भय से अपने जैसे दोषों को आचरने वाले गुरु के आगे आलोचना कहे।

शास्त्र में कहा है कि –

न हु सुज्झइ ससल्लो जह भणियं सासणे धुयरयाणं।
उद्धरियसव्वसल्लो सुज्झइ जीवो धुयकिलेसे॥१॥

कर्मरज जिन्होंने दूर कर दी है, ऐसे परमात्मा के शासन में कहा गया है कि शल्य (छिपाए हुए पाप) सहित कोई भी जीव शुद्ध नहीं होता है। क्लेश रहित बनकर सभी शल्यों को दूर करके ही जीव शुद्ध बनता है। अतः शुद्ध होने के लिए आलोचना अवश्य कहनी चाहिए।

खुद के जीवन में जिस किसी भाव से जान-बूझकर या अनजाने में पाप किए हों, उसी भाव से कपटरहित होकर बालक की तरह गुरुदेवश्री से उन पापों को कह दे। उसे ही प्रायश्चित दिया जाता है और वही आत्मा शुद्ध होती है। परन्तु माया के कारण अमुक पापों को हृदय रूपी गुफा में छुपाकर रखे, उसे केवलज्ञानी जानते हुए भी प्रायश्चित नहीं देते तथा छद्मस्थ गुरु भी दो तीन बार सुनें और यदि उन्हें यह ज्ञात हो जाए कि जीव माया के कारण स्वयं के पापों को छिपा रहा है, तो उसे गुरुदेव प्रायश्चित नहीं देते और कह देते हैं कि दूसरे के पास प्रायश्चित लेना, परन्तु जिस व्यक्ति को ज्ञानावरणकर्म आदि दोषों के कारण पाप याद नहीं आते हो, तो गुरुदेवश्री भिन्न-भिन्न प्रकार से उसको याद करवाते हैं, परन्तु जान-बूझकर पाप छिपानेवाले को याद नहीं कराते। शास्त्र में कहा है कि –

कहेहि सव्वं जो वुत्तो जाणमाणे गुहई।
न तस्स दिंति पायच्छित्तं बिंति अन्नत्थ सोहय॥१॥
न संभरइ जो दोसे सब्भावा न य मायाओ।
पच्चक्खी साहए ते उ माइणो उ न साहइ॥२॥

कोई ओघ-सामान्य ढंग से ऐसे कह दे कि मैंने अनेक पाप किए हैं, सभी का प्रायश्चित दे दीजिए और जानते हुए भी अपने दोषों को छुपाये, तो उस व्यक्ति को भी प्रायश्चित नहीं दिया जाता, दूसरे गुरु के पास शुद्धि करना ऐसा कह देते हैं। परन्तु एक-एक पाप याद करके कह दे और जो पाप वास्तव में याद न आये, उसका ओघ से प्रायश्चित मांगे, तो प्रायश्चित दिया जाता है। आज तक अनंत आत्माओं ने आलोचना कहने से मोक्ष प्राप्त किया हैं। शास्त्र में कहा है कि –

निट्ठियपापपंका सम्मं आलोइउं गुरुसगासे।
पत्ता अणंतजीवा सासयसुखं अणाबाहं॥१॥

अर्थात् पापरूपी कीचड़ का जिन्होंने नाश किया है, ऐसे अनंत आत्माओं ने गुरु के पास सुन्दर रीति से आलोचना लेकर बाधा से रहित ऐसे अनंत शाश्वत सुख को प्राप्त किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलोचना सब को करनी चाहिए

जह सुकुसलो वि विज्जो अन्नस्स कहेइ अत्तणो वाहि।
एवं जाणगस्स वि सल्लुद्धरणं परसगासे॥१॥

जिस प्रकार कुशल वैद्य भी स्वयं की व्याधि दूसरों से कहता है, उसी प्रकार प्रायश्चित को जानने वाले गीतार्थ आचार्य को भी दूसरे के पास आलोचना करनी चाहिए अर्थात् उपाध्याय-पंन्यास-गणि साधु-श्रावक आदि सब को आलोचना अवश्य करनी चाहिए। आलोचना कहने के सिवाय आत्मा शुद्ध नहीं होती है।

आलोचना न लेने से हानि :- जो अनर्थ जहर से नहीं होता, शस्त्र या तीर से नहीं होता, उससे अनेक गुनी हानि मायाशल्य से अर्थात् अंदर छिपाए हुए पापों से हो जाती है। पाप गुप्त रखने से रूक्मिणी के एक लाख (१०००००) भव हो गये। विष से एक बार मृत्यु प्राप्त होती है, परन्तु पापों को प्रगट नहीं करने से हजारों बार मृत्यु के अधीन होना पड़ता है। शास्त्र में कहा हैं कि -

नवि तं सत्थं व विसं दप्पयुत्तो व कुणई वेतालो।
जं कुणई भावसल्लं अणुद्धरियं सव्वदुहमूलं॥१॥

शस्त्र, विष या अभिमान से क्रोधित वेताल जो हानि नहीं करता, वह हानि सर्व दुःखों का मूल अनालोचित भावशल्य करता है। आलोचना करने वालों को यद्यपि गुरुमहाराज महान व्यक्ति मानते हैं और उसकी पीठ भी थपथपाते हैं, फिर भी उसके हित के लिए यदि गुरुदेव कोई शिक्षा-वचन कहे, तो भी गुरु के ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए।

आलोचना के पश्चात् पश्चात्ताप नहीं करना चाहिए; कि ''अरर! यह मैंने क्या किया ? अपने जीवन की सारी कमजोरियाँ स्पष्ट कर दी। अरर ! क्या होगा?'' इस प्रकार के विचार आने नहीं देने चाहिए, बल्कि आनंद व्यक्त करना चाहिए। शास्त्र में कहा है कि -

अणणुतापी अमायी चरणजुआलोयगा भणिया।

अर्थात् पीछे से पश्चात्ताप नहीं करने वाला आलोचक अमायावी और चारित्रयुक्त कहा गया है।

जिस तरह सुकृत करने के बाद पश्चाताप नहीं किया जाता, उसी तरह आलोचना कहनी, यह भी एक सुकृत है। इसलिये आलोचना कहने के बाद उस सुकृत की अनुमोदना करनी चाहिए। पश्चाताप नहीं। स्वयं को आया हुआ प्रायश्चित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरों को बताये नहीं। आलोचना करने के बाद तथा प्रायश्चित लेने के पश्चात् ऐसा प्रयत्न होना चाहिए, जिससे वे पाप पुनः न हों क्योंकि पुनः पुनः वे पाप करने से अनवस्था खड़ी हो जाती है। कदाचित् मोहवश पुनः हो जाएँ, तो फिर से किए हुए पापों की पुनः आलोचना लेनी चाहिए। शास्त्र में कहा है कि –

तस्स य पायच्छित्तं जं मग्गविऊ गुरु उवइसंति।
तं तह आयरियव्वं अणवत्थ पसंगभएण॥१॥

अर्थात् मोक्षमार्ग के जानकार गुरुदेवश्री जो प्रायश्चित देते हैं, उसको अनवस्था के भय से उसी प्रकार वहन करना चाहिए। प्रायश्चित वहन न करने से पुनः अनायास दूसरी बार पाप हो जाते हैं एवं यह देखकर दूसरे व्यक्ति भी आलोचना-प्रायश्चित नहीं करेंगे, वे निर्भय होकर पाप करते रहेंगे, जिससे अनवस्था होगी।

आलोचना नहीं लेने वाला व्यक्ति कदाचित् अनशन भी कर ले, तो भी शुद्ध नहीं होता, परन्तु दुर्लभ बोधि और अनंत संसारी बनता हैं। पूर्वाचार्यो ने कहा है कि –

जं कुणई भावसल्लं, अणुद्धरियं उत्तमट्ठकालम्मि।
दुल्लहबोहियत्तं अणंतसंसारियत्तं च॥१॥

उत्तमार्थ–अनशन के समय यदि भावशल्य को दूर नहीं करता है, तो अनशन करने वाला दुर्लभ बोधि और अनंत संसारी बनता है।

खिले हुए फूल के समान उत्तम मनुष्य जन्म में देव, गुरु और धर्म की सामग्री मिलने पर भी यदि वह व्यक्ति अब आलोचना न ले, तो उसका यह मनुष्य जीवन रुपी फूल मुरझा जायेगा और जीव को दुर्गतियों में भवभ्रमण करना पड़ेगा। इसलिये आलोचना का प्रायश्चित रूपी पानी छिटकते रहना चाहिए। अतः इस पुस्तक का नाम रखा है, ''कहीं मुरझा न जाए।'' अरे जीव ! तू भव आलोचना ले लेना, अन्यथा यह मनुष्य जीवन का फूल कहीं मुरझा जायेगा। खिला हुआ फूल मस्तक आदि शुभ स्थान पर चढ़ता है। यदि मस्तक आदि पर न चढ़ा, तो मुरझाने पर धूल में फेंक दिया जाता है। रे जीव ! तू भी मुरझाए हुए फूल की तरह दुर्गतिरूपी धूल में फेंक दिया जाएगा। अतः हे जीव ! तुझे रेड सिग्नल दिया गया है कि, ''कहीं मुरझा न जाए!'' एक बार भव आलोचना लेने के बाद हर वर्ष वार्षिक आलोचना लेनी चाहिए। ऐसा श्रावक के वार्षिक ११ कर्तव्य में कहा हुआ है। जो हर वर्ष गुरु का योग न मिले, तो जब योग मिले, तब आलोचना कर लेनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आज भी प्रायश्चित्त विधि है।

यदि कोई आत्मा कहती है कि आज इस काल में प्रायश्चित्त नहीं है, प्रायश्चित्त देने वाले नहीं है, इस प्रकार बोलने वाली आत्मा दीर्घसंसारी बनती है, क्योंकि नौवें पूर्व की तृतीय वस्तु में से उद्धृत आचार कल्प, व्यवहार सूत्र आदि प्रायश्चित्त के ग्रंथ एवं वैसे गंभीर गुरुवर आज भी विद्यमान हैं।

गुरुदेव से शुद्ध आलोचना लेने पर अपनी आत्मा हल्की हो जाती है, जैसे माथे से भार उतारने के पश्चात् भारवाहक स्वमस्तक अत्यंत हल्का महसूस करता है। वंदित्तु सूत्र में कहा है कि –

कयपावो वि मणुस्सो आलोइय निंदिय गुरुसगासे।
होई अइरेगलहुओ ओहरिय भरुव्व भारवहो॥१॥

जिस जीव ने पाप किया है, वह यदि गुरु के पास उसकी आलोचना और निंदा करता है, तो वह अत्यंत लघु-हल्का बन जाता है। मानो भारवाहक ने माथे पर से भार उतार कर रख दिया हो। पाप करना दुष्कर नहीं है क्योंकि, अनादिकाल से मोहनीय कर्म आदि के परवश बनी हुई आत्मा पाप कर लेती है। तीर्थंकर की आत्माओं ने भी पाप किया था, परन्तु आलोचना के द्वारा वे भी शुद्ध बने, तभी उनका आत्मोत्थान हुआ। आलोचना लेनी, यही दुष्कर है। ज्ञानी भगवंतों ने कहा है कि –

तं न दुक्करं जं पडिसेविज्जई ,
तं दुक्कर जं सम्मं आलोइज्जइत्ति।

पाप करना दुष्कर नहीं है, परन्तु भली प्रकार से आलोचना लेना दुष्कर है।

प्रायश्चित आलोचना

देने वाले गुरुदेवश्री कैसे होते है?

आयारवमाहारव
ववहारोऽपवीलओ पकुव्वे य।
अपरिस्सावी निज्ज
अवायदंसी गुरु भणियो॥१॥

ज्ञानाचारादि पाँच प्रकार के आचार को सुंदर रीति से पालने वाले हो, आलोचक (आलोचना करने वाला) के अपराधों के अवधारण में समर्थ हो। आगम से लेकर जित व्यवहार तक के पाँच व्यवहारों के जानकार हों। अपव्रीडक-लज्जा के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारण कोई व्यक्ति स्वपापों को छिपाता हो। उसकी लज्जा दूर करके ठीक प्रकार से आलोचना करवाने वाले हों। प्रकुर्वक-आलोचक की शुद्धि करने के लिए समर्थ हों। अपरिश्रावी = आलोचक द्वारा कहे हुए दोष दूसरों को बताने वाले न हों। निर्यापक = अर्थात् वृद्धत्व आदि के कारण प्रायश्चित वहन करने में असमर्थ हो, तो उसे योग्य प्रायश्चित देकर प्रायश्चित नहीं करने वालों को परलोक का भय मार्मिक ढंग से समझने वाले और गीतार्थ हों। ऐसे प्रायश्चित देने वाले गुरु बताए गए हैं।

अगीतार्थ गुरु शास्त्र के जानकार नहीं होने से कम या अधिक प्रायश्चित देकर खुद भी संसार में गिरते है और दूसरों को भी गिराते है। अतः आलोचना के लिए उत्कृष्ट से ७०० योजन (5600 miles) और काल से १२ वर्ष तक अच्छे गीतार्थ गुरु की खोज करनी चाहिए।

विवक्षित क्षेत्र और काल के अन्दर गीतार्थ गुरु न मिलें और पश्चात्ताप के तीव्र भाव रूप भाव-आलोचना हो जाय, तो वह जीव द्रव्य-आलोचना किए बिना भी केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। जैसे कि झाँझरिया ऋषि की हत्या कराने वाला राजा। सद्गुरु की खोज में कदाचित् मृत्यु भी हो जाय, तो भी आलोचना की अपेक्षा वाला होने से आराधक बनता है। परंतु सद्गुरु मिलने पर भी आलोचना की उपेक्षा करे, तो वह आराधक कैसे बनेगा ? अतः आलोचना अवश्य लेनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित देने वाले गुरु कौन होते हैं ?

आलोचना का प्रायश्चित देने वाले गुरु पांच व्यवहारों के जानकार होते हैं। १) **आगम व्यवहारी** :- अर्थात् केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, १४, १०, ९ पूर्वी हो, उनके पास प्रायश्चित लेना चाहिए। २) **श्रुत व्यवहारी** :- आगम व्यवहारी का योग नहीं मिले, तो श्रुतव्यवहारी यानि की आधे से लेकर ९ पूर्वी, ग्यारह अंग, निशीथ आदि के जानकार के पास प्रायश्चित लेना चाहिए। ३) **आज्ञा व्यवहारी** :- श्रुत व्यवहारी का योग नहीं मिले, तो दो गीतार्थ आचार्य मिल सके, ऐसा संभव न हो, तब सांकेतिक भाषा में अगीतार्थ साधु को समझाकर गीतार्थ आचार्यश्री के पास भेजें और वे गीतार्थ आचार्यश्री सांकेतिक भाषा में उसे जवाब दें। उसके पास प्रायश्चित लेना चाहिए। ४) **धारणा व्यवहारी** :- आज्ञा व्यवहारी नहीं मिले, तो गीतार्थ गुरू ने जो प्रायश्चित दिया हों, वह याद रखकर जो प्रायश्चित दें, उनके पास प्रायश्चित लेना चाहिए। ५) **जित व्यवहारी** :- धारणा व्यवहारी नहीं मिले, तो जो गुरू सिद्धान्त में बताये हुये प्रायश्चित से, द्रव्य-क्षैत्र-काल-भाव को जानकर कम या अधिक प्रायश्चित देते हों। वर्तमान काल में जित व्यवहारी स्वगच्छ के आचार्यश्री के पास साधु या श्रावक प्रायश्चित लें, यदि स्वगच्छ के आचार्यश्री नहीं मिले, तो स्वगच्छ के उपाध्यायश्री, प्रवर्तक, स्थविर या गणावच्छेदक के पास प्रायश्चित लेना चाहिए। यदि ऊपर कहे मुताबिक नहीं मिले, तो सांभोगिक अर्थात् जिसके साथ स्वगच्छ की सामाचारी मिलती हो, उन आचार्यादि पांच के पास प्रायश्चित लेना चाहिए। यदि वैसे आचार्यादि भी नहीं मिले, तो विषम समाचारी वाले आचार्यादि पांच के पास प्रायश्चित लेना चाहिए।

उपर्युक्त कथन के अनुसार ७०० योजन एवं १२ वर्ष तक गीतार्थ गुरू नहीं मिले, तो फिर गीतार्थ पासत्था के पास प्रायश्चित ले। प्रायश्चित लेने के लिए पासत्था को भी वंदन करने चाहिए, क्योंकि धर्म का मूल विनय है। यदि पासत्थादि स्वयं को गुणरहित मानें और वंदन नहीं करवाये, तो आसन पर बैठने की विनंति करके प्रणाम करके फिर आलोचना ले। यदि गीतार्थ पासत्थ आदि का संयोग नहीं मिले, तो गीतार्थ सारूपिक के पास आलोचना का प्रायश्चित ले। सारूपिक अर्थात् जो सफेद वस्त्र धारण करे, सिर पर मुंडन करवाये, धोती का कच्छ न बांधे, ओघा न रखे, पत्नी नहीं रखे, ब्रह्मचर्य का पालन करे, भिक्षा (गोचरी) से जीवन निर्वाह करे। यदि सारूपिक का योग नहीं मिले, तो सिद्धपुत्र पश्चात्कृत के पास आलोचना का प्रायश्चित लें। सिद्धपुत्र यानि कि सिर पर चोटी रखे और पत्नी सहित हों। चारित्र और साधु के वेष का त्याग करके गृहस्थ बना हो, वह पश्चात्कृत कहलाता है। उसको वेश पहनाकर ईर्यावरिक सामायिक उच्चराकर विधिपूर्वक प्रायश्चित लेना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त कहे हुए जो पासत्थ आदि नहीं मिले, तो राजगृही नगरी में गुणशील चैत्य (मंदिर) आदि में जिन देवताओं ने तीर्थंकर, गणधर वगैरह महापुरूषों को आलोचना देते हुए देखे हैं, उनको अट्ठम आदि तप से प्रसन्न करके उनके पास आलोचना ले। कदाच ऐसे देवों का च्यवन हो गया हों, तो दूसरे देव को स्वयं की आलोचना कहकर महाविदेह क्षेत्र में से अरिहंत भगवान आदि के पास से प्रायश्चित मँगवाये।

यदि वह भी संभव न हों, तो प्रतिमाजी के सामने आलोचना कहकर प्रायश्चित लेकर शुद्ध बने। यदि उसकी भी शक्यता नहीं हो, तो पूर्व और उत्तरदिशा में अरिहंत एवं सिद्ध भगवान की साक्षी में आलोचना लेकर प्रायश्चित को स्वीकार करें, परन्तु पाप के प्रायश्चित लिये बिना नहीं रहें, क्योंकि शल्य सहित मृत्यु प्राप्त करने वाले विराधक बनते हैं। अनंत संसार परिभ्रमण करते हैं। यहां विशिष्ट रूप से ध्यान रखने योग्य है कि आलोचना का प्रायश्चित स्वगच्छीय आचार्यश्री आदि के पास में ही लेना चाहिए। यदि उनका संयोग ही नहीं मिले, तो ही अन्त में पूर्व या उत्तरदिशा में मुँह रखकर अरिहंत की साक्षी में आलोचना कहनी चाहिए। परन्तु स्वगच्छीय आचार्यश्री आदि का संयोग मिलता हो, तो पूर्व या उत्तर दिशा में मुँह रखकर अरिहंत की साक्षी में आलोचना कहे, तो वह आराधक नहीं बनता।

शुद्ध आलोचना लेने से ८ गुण प्रकट होते हैं :- लघुआ ल्हाई जणणं अप्परपरानिवत्ति, अज्जव। सोही दुक्करकरणं आणा निसल्लत्तं सोहिगुणा॥१॥

अर्थात् १) जैसे माथे से भार उतारने के पश्चात् भारवाहक हल्कापन महसूस करता है, उसी प्रकार शुद्ध आलोचना करने के पश्चात् हृदय और मस्तक में हल्कापन महसूस होता है, क्योंकि दोषों का बोझ दिल दिमाग पर नहीं रहा। २) ल्हाई जणणं अर्थात् आनंद उत्पन्न होता है। जिस तरह कोई पैसे खर्च कर सुकृत करें, तो उसे उस सुकृत के आनंद की अनुभूति होती है। उसी तरह मन को तैयार कर आलोचना शुद्धि करने रूप जो सुकृत करें, तब उसे उस सुकृत के आनंद की अनुभूति होती है। ३) आलोचना कहने से खुद के दोषों की निवृति होती हैं और उसे देखकर दूसरे भी आलोचना शुद्धि करते हैं। जिससे स्व-पर दोषो की निवृत्ति होती है। ४) सरलता गुण प्रकट होता है। ५) दोषरूपी मैल दूर हो जाने से आत्मा शुद्ध बनती हैं। ६) पूर्वभवों का अभ्यास होने से दोषों और पापों का सेवन हो जाता हैं, वह दुष्कर नहीं हैं, परंतु जो उसकी आलोचना गुरुदेव से कहे, वह दुष्करकारक कहलाता हैं, क्योंकि मोक्ष के अनुरुप प्रबल वीर्य के उल्लास विशेष के द्वारा ही वैसी आलोचना कही जाती है। ७) जिनेश्वर भगवान की आज्ञा की आराधना होती है, क्योंकि तीर्थंकर परमात्माने ही गीतार्थ गुरु के पास आलोचना लेने के लिये कहा है। ८) दोषरुपी शल्य से मुक्त बनते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आलोचना के बिना मुरझाए फूल...

1 रुक्मिणी के एक लाख भव...

क्षितिप्रतिष्ठित नगर के राजा की पुत्री रूक्मिणी ने यौवन वय में कदम रखा ही था कि राजा ने उसका विवाह योग्य राजकुमार के साथ कर दिया, परन्तु विवाह होते ही उसका पति यमशरण हो गया। बालविधवा हो जाने से वह भयभीत हो गई। निराधार होने का उसे जितना दुःख नहीं था, उससे भी अनेक गुना दुःख उसे आजीवन ब्रह्मचर्य पालने की असमर्थता में लगा। वह अग्नि में कूदने की तैयारी करने लगी। तब उसके पिता ने उसे समझाया कि अग्नि में जल मरने से आत्महत्या का पाप लगता है। आत्महत्या से महान दुर्गति भी होती है। हत्या करने वाले जीवन में प्रायश्चित ले सकते हैं, लेकिन आत्महत्या करने से परलोक में न प्रायश्चित ले सकते, न पति का मिलन भी होता है। अतः जलकर मरने का विचार छोड़ दे और अपना जीवन धर्म अनुष्ठान में लगा दे। उसकी पूर्ण व्यवस्था राज्य की ओर से हो जायेगी। धर्म अनुष्ठान में व्यस्त रहने से तू सरलता से ब्रह्मचर्य पाल सकेगी। तेरा चित्त धर्म अनुष्ठानों से ओत-प्रोत हो जायेगा।

रूक्मिणी ने पिताश्री के वचनों को मान्य कर अपने विचारों को बदल दिया। दिन प्रतिदिन वह अधिकाधिक धर्मसाधना करने लगी। उसमें ब्रह्मचर्य के गुणों का भी विकास होने लगा। इस गुण के प्रताप से उसकी यशोगाथा गाँव-गाँव में पहुँच गई। इसी बीच उसके पिता की मृत्यु हो गई। उस समय कुछ मंत्रियों ने विचार किया कि राजा निष्पुत्र है, इसलिए राज्याभिषेक किसका किया जाये ? कुछ मंत्रियों की ओर से यह सूचना थी कि रूक्मिणी यद्यपि पुत्री है, तथापि पवित्र आत्मा है। अतः उसे ही राजगद्दी पर बिठाना उचित है। सभी ने स्वीकृति प्रदान की। राजगद्दी पर बैठने के बाद भी रूक्मिणी शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करती थी। इससे उसकी कीर्ति चारों दिशाओं में व्याप्त हो गई।

रूक्मिणी के ब्रह्मचर्य गुण की ख्याति से आकर्षित होकर एक ब्रह्मचर्य प्रेमी बुद्धिमान युवक, जिसका नाम शीलसन्नाह था, वह मंत्रीपद के लिए आया। उसका यह विचार था कि भरण-पोषण भी होगा और एक गुणवान् आत्मा की सेवा भी होगी। सद्भाग्य से उसे मंत्रीपद भी मिल गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूक्मिणी की दृष्टि राजसभा में शीलसन्नाह मंत्री के ऊपर स्थिर हो गई ।

एक दिन राजसभा में शीलसन्नाह मंत्री बैठा था। राज-सिंहासन पर बैठी हुई रुक्मिणी चारों ओर दृष्टि घूमा रही थी। इतने में यौवन और लावण्य जिसके अंग-अंग में विकसित हो गया था, उस शीलसन्नाह मंत्री पर दृष्टि गिरी, गिरते ही दृष्टि वहीं स्थिर हो गई। ''अहो ! इस मानव का इतना रूप है? अरे ! यौवन छलक रहा है।'' ऐसे मन में कुविचारों का चक्र प्रारंभ हो गया और दृष्टि में विकार आ गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शीलसन्नाह मंत्री की उपस्थिति में
विचारसार राजा को कवल लेते ही
सेनाधिपति ने
दौड़ते हुए आकर रोक दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शीलसन्नाह को वस्तुस्थिति समझने देर न लगी। वह विचार करने लगा–अरे ! मैं तो चारों दिशाओं में ख्यातनाम एक ब्रह्मचारिणी की सेवा करने आया था। ओह ! पानी में से आग उठी है। कहाँ जाऊँ ? धिक्कार हो इस कामवासना को ! क्या इस कामाग्नि में मैं भी भस्मीभूत हो जाऊँगा? नहीं, नहीं..... मुझे कहीं पर चले जाना चाहिए। यहाँ रहना उचित नहीं है। क्या पता कब उसकी कामाग्नि मेरे आत्मदेह को जला कर भस्म कर देगी? मेरी आत्मा को अपने पंजे में ले, इससे पहले ही मैं किसी दूसरे राज्य में चला जाऊँ!

इस प्रकार विचार कर वह राज्य छोड़कर चला गया।

वह शीलसन्नाह मंत्री विचारसार नामक दूसरे राजा के पास गया और वहाँ उसने मंत्रीपद की याचना की। अनेक परीक्षा करने के बाद विचारसार राजा ने कहा कि, ''आपकी बुद्धि की परीक्षा के बाद हमें विश्वास है कि आप मंत्रीपद के स्थान को सुशोभित कर सकोगे। परंतु विशेष विश्वास के लिए इतना ही पूछना है कि क्या आपने इससे पहले किसी राजा की सेवा की है? तो उसका नाम बताइए।'' उसने जवाब दिया –''माफ कीजिएगा! मैं उसका नाम नहीं बताऊँगा, क्योंकि उसका नाम लेने से हाथ में लिया हुआ ग्रास भी छोड़ना पड़ता है।'' राजा ने कहा –''आप यह क्या कह रहे हैं? क्या किसी का नाम लेने मात्र से ग्रास छोड़ना पड़ता है? आप गप तो नहीं हाँक रहे हैं। लो! अभी भोजन मंगवाता हूँ।'' इस प्रकार कह कर राजा ने भोजन का थाल मंगवाया। हाथ में एक ग्रास (कवल) लेकर शीलसन्नाह से कहा कि अब उस राजा का नाम बोलिए। तब उसने कहा, ''रूक्मिणी।'' इतना उच्चारण करते ही एक संदेशवाहक ने आकर राजा से कहा –''चलिए, जल्दी चलिए। शत्रुओं ने राज्य पर आक्रमण कर दिया है। विकट परिस्थिति खड़ी हो गई है। अपनी सेना पीछेहट कर रही है। हार–जीत का सवाल है। आप शीघ्र पधारिये।'' राजा ने तुरंत हाथ में लिया हुआ कवल थाली में डाल दिया और युद्ध के लिए प्रयाण किया। शीलसन्नाह भी साथ में गया। युद्ध की सीमा पर राजा को रोक कर शीलसन्नाह ने युद्धभूमि में प्रवेश किया कि तुरंत ही... उसे मारने के लिए शत्रु सैनिक सामने आने लगे। युद्धभूमि में प्रवेश करते ही उन सैनिकों को शीलसन्नाह के ब्रह्मचर्य के प्रति अनुराग के कारण शासन–देवी ने स्तंभित कर दिए और आकाशवाणी की कि, ''ब्रह्मचर्य में आसक्त शीलसन्नाह को नमस्कार हो।'' इस प्रकार घोषणा करके देवताओं ने उस पर पुष्पवृष्टि की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलसन्नाह लोच करके दीक्षा लेते हैं।

शीलसन्नाह यह सुनकर ऊहापोह करने लगा। इतने में तो विचार करते-करते उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। ब्रह्मचर्य का प्रेम भी आत्मा को इतने उच्च स्थान पर पहुँचा सकता है, तो जीवनभर ब्रह्मचर्य के साथ संयम पालूँ, तो कैसा अद्‌भुत उत्थान होगा? इत्यादि वैराग्यभाव में आकर उसने वहीं पर दीक्षा ले ली।

शीलसन्नाह मुनि विहार करते-करते एक बार क्षितिप्रतिष्ठित नगर में आये। वहाँ रुक्मिणी वंदन करने आयी और उद्यान में देशना सुनी। देशना सुनने से उसके रोम-रोम वैराग्य से झनझनाने लगे। दिल रूपी बावड़ी में वैराग्यभाव का पानी उछलने लगा। उसने समग्र संसार का परित्याग कर चारित्र ग्रहण किया।

बहुत वर्षों के बाद शीलसन्नाह आचार्य हुए, उसके पश्चात् एक बार शीलसन्नाह आचार्य के पास रुक्मिणी साध्वी विहार करके आयी और कहने लगी कि, ''मुझे अनशन करना है।'' जब आचार्यश्री ने कहा कि अनशन करने से पहले आलोचना करके आत्मा को हल्का बनाना चाहिए। जिससे सद्‌गति और मोक्ष की प्राप्ति हो। उसने आलोचना कहनी शुरू की। अनेक प्रकार की हिंसा, असत्य, चोरी आदि की आलोचना कह दी। परंतु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजदरबार में घटित आँख के पाप की आलोचना नहीं कही। आचार्यश्री ने अनेक प्रकार से वह पाप याद कराने और आलोचना करवाने का प्रयत्न किया। परन्तु उसने दूसरे नए किए हुए हिंसादि पापों को याद कर आलोचना ग्रहण की। अन्त में आचार्य भगवंत ने साध्वीजी को कहा कि राजदरबार में किसी व्यक्ति पर विकारमय दृष्टि डाल कर पाप किया हो, तो उसकी भी आलोचना करनी चाहिए। रूक्मिणी साध्वी समझ गई कि आचार्यश्री तो मेरा पाप जानते हैं। अब यदि उनके समक्ष इकरार करूँगी, तो उसने कल्पना की कि उनकी दृष्टि में हलकी-नीच गिनी जाऊँगी। परंतु अब मेरे महत्त्व का रक्षण किस तरह करूं? मोहनीय कर्म के उदय से स्वयं का महत्त्व और अहंत्त्व बनाए रखने के लिए उसने बात को मोड़ दिया और कहा कि मैंने मंत्री के सत्त्व की परीक्षा के लिए दृष्टि डाली थी। इस प्रकार पाप को छिपाया और शुद्ध आलोचना न ली। जिससे उसके एक लाख (१००००) भव हुए।

अब विचार कीजिये कि अनेक प्रकार के पापों की आलोचना करने पर हम यदि एक भी पाप की आलोचना छिपा देंगे, तो रूक्मिणी की तरह हमारी आलोचना शुद्ध नहीं हो पायेगी। हाँ, पाप याद करने पर भी याद न आए, तो अन्त में यह कहना कि ''मैंने इससे भी अधिक पाप किये हैं। ओह गुरुवर्यश्री ! कुछ तो याद ही नहीं आते हैं, अतः कई पाप अनजान में रह गया हो, तो उसका भी प्रायश्चित करने को तैयार हूँ। उनका मिच्छामि दुक्कडम्।''

छउमत्थो मूढमणो कित्तियमित्तं संभरइ जीवो। जं च न संभरामि मिच्छामि दुक्कडं तस्स॥१॥

हे तारक गुरुदेव! मैं अज्ञान और मूढ़मन वाला हूँ। मुझे कितना याद रह सकता है? जो याद नहीं हो, उसका मिच्छामि दुक्कडम्।

2 एक कृषकने जूं मारी...

पाप की भयंकरता किसी कार्य पर आधारित नहीं होती, परन्तु जीव के आंतरिक परिणामों पर आधारित होती है। तीव्र परिणाम वाले युवक ने बबूल के कांटे से जूं मार डाली। उसके बाद उसने उसकी आलोचना नहीं ली, तो उस कृषक को सात बार शूली (फाँसी) पर चढ़ना पड़ा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

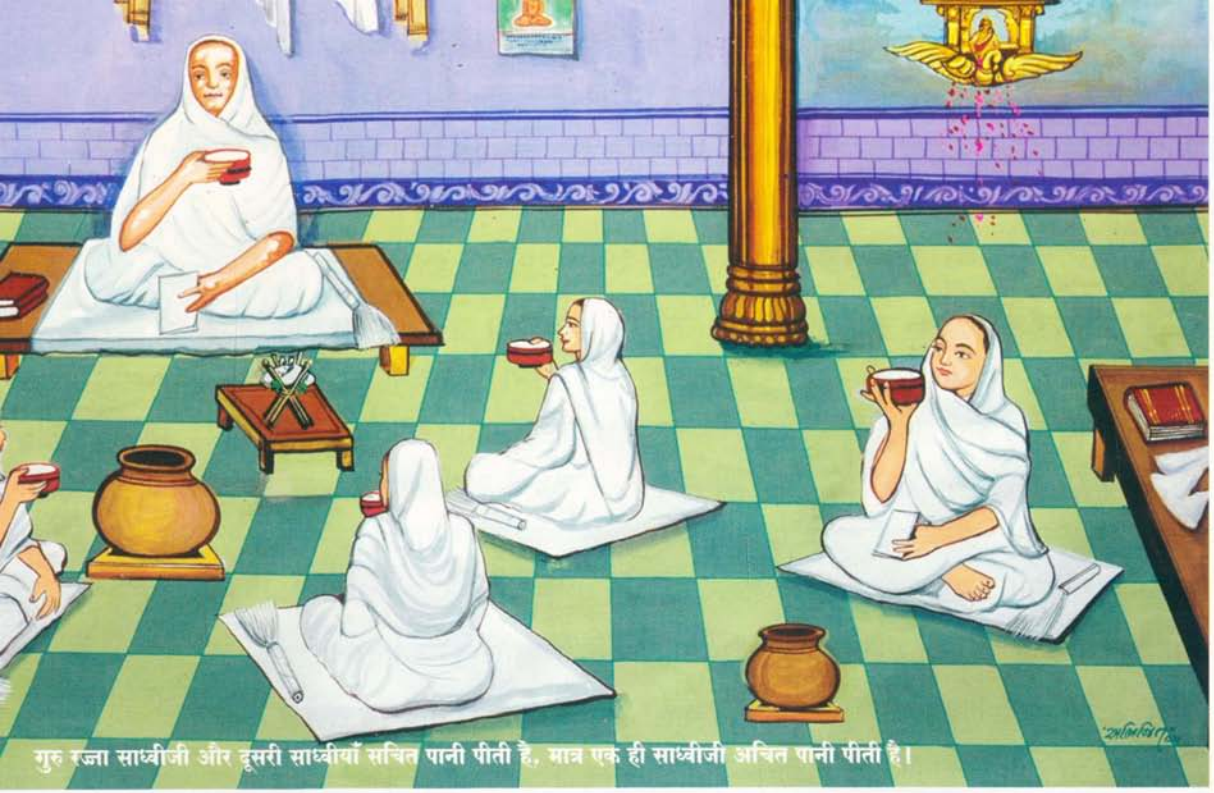

गुरु रज्जा साध्वीजी और दूसरी साध्वीयाँ सचित्त पानी पीती है, मात्र एक ही साध्वीजी अचित्त पानी पीती है।

3 रज्जा साध्वी ने सचित्त पानी पीया

रज्जा साध्वीजी को कोढ़ रोग हो गया था। एक साध्वीजी ने उससे पूछा कि यह रोग आपको कैसे हुआ? तब उसने कहा कि अचित्त (उबाला हुआ) पानी पीने से गर्मी के कारण यह रोग हुआ है। इस प्रकार तीव्र भाव से असत्य बोल दिया और स्वयं की वास्तविकता छिपायी, क्योंकि वस्तुतः अशाता-वेदनीय कर्म-के उदय से तथा अति गरिष्ठ भोजन से पाचन क्रिया बिगड़ जाने के कारण अजीर्ण से यह रोग उत्पन्न हुआ था। गुरुदेव द्वारा इस प्रकार अचित्त पानी का जवाब मिलने पर दूसरी साध्वियों ने भी अचित्त पानी पीना छोड़ दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनमें से एक साध्वीजी ने अपने मन को दृढ़ रखा। उन्होंने विचार किया कि अरिहंत भगवान का संयम मार्ग ऐसा है कि उसका पालन करने से रोग आता ही नहीं। रोग तो असमाधि का कारण है। रोग आए या बढ़े, तो उससे तो असमाधि होती है। उस असमाधि को प्रोत्साहन मिले, ऐसा भगवान बतायेंगे ही क्यों? उस साध्वीजी के खून की बूंद-बूंद में भगवान के शासन की श्रद्धा उछल रही थी। वह दूसरी साध्वियों को अनेक रीति से समझाती थी, परन्तु कोढ़ रोग के भय के कारण दूसरी साध्वियाँ समझती नहीं थी। इसलिए उस छोटी साध्वीजी को खूब पश्चाताप हुआ। अरे प्रभो! मैंने अनादेय नामकर्म वगैरह कैसे अशुभ कर्म बांधे हैं? जिससे सच्ची बात समझाने पर भी ये साध्वियाँ समझती नहीं हैं। इस प्रकार पश्चाताप और आत्म-निंदा, काउस्सग्ग आदि करते करते उसे केवलज्ञान हो गया।

केवलज्ञानी की महिमा करने के लिए देव-देवियाँ आई। दूसरी साध्वियों को विचार आया कि अरर! हमने बड़ी भूल की है। उन्होंने केवलज्ञानी के पास आलोचना कर प्रायश्चित लेकर आत्मशुद्धि कर ली। परन्तु रज्जा साध्वी आलोचना लिए बिना मर कर अनंत भव भ्रमण करने वाली बनी।

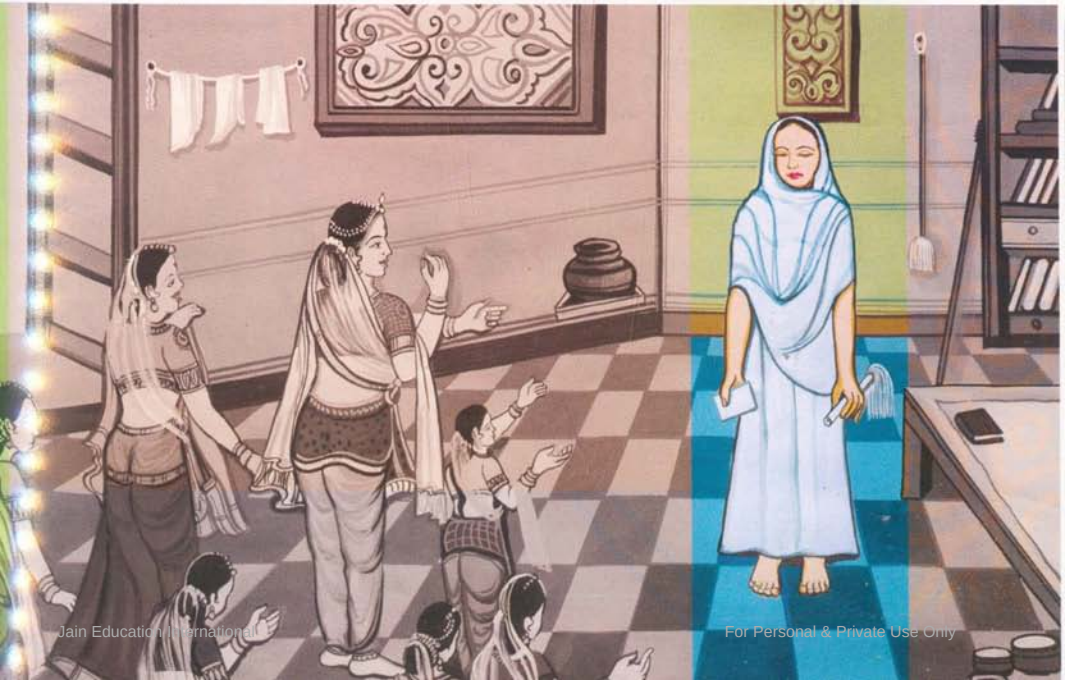

■ सचित पानी न पीनेवाली साध्वीजी को केवलज्ञान हुआ और देव-देवी महिमा करने के लिए आयें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रिदंडिक मरीचि कुलमद से नाच रहा है।

कपिल मरीचि का शिष्य बनकर नमस्कार कर रहा हैं।

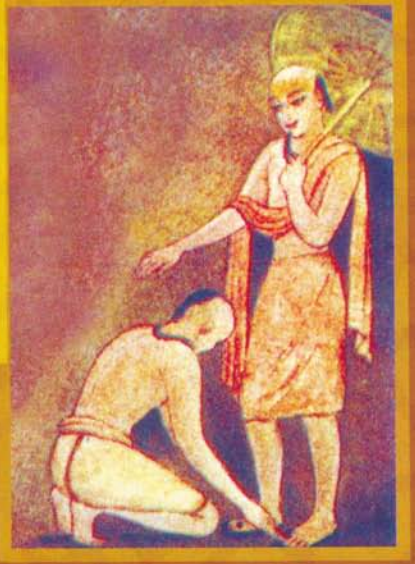

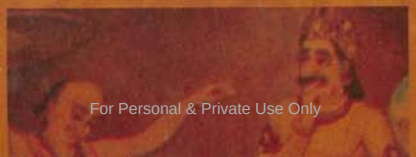

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

4 मरीचि, अहंकार और उत्सूत्र...

ऋषभदेव भगवान के पास भरत चक्रवर्ती के पुत्र मरीचि ने दीक्षा ग्रहण की। बाद में दुःख सहन करने में कमजोर बनने से उसने त्रिदंडिक वेश धारण किया। इस प्रकार वह चारित्र का त्याग करके देशविरति का पालन करने लगा। अल्प जल से स्नान करना, विलेपन करना, खड़ाऊँ पहनना, छत्र रखना वगैरह क्रिया करने लगा। एक बार भरत महाराजा ने समवसरण में भगवान ऋषभदेव से पूछा- हे प्रभु ! आज कोई ऐसा जीव है जो भविष्य में तीर्थंकर बनेगा? तब भगवान ने कहा कि ''हे भरत ! तेरा पुत्र मरीचि इस भरत क्षेत्र में प्रथम वासुदेव, महाविदेह में चक्रवर्ती और भरत क्षेत्र में अंतिम तीर्थंकर बनेगा।''

यह सुनकर भरत चक्रवर्ती मरीचि को वंदन करने गये। वंदन करके भरत ने कहा कि, हे त्रिदंड धारण करने वाले साधु! मैंने तुम्हें वंदन नहीं किया है। परन्तु तुम भरत क्षेत्र में तीर्थंकर, महाविदेह में चक्रवर्ती और भरत क्षेत्र में प्रथम वासुदेव बनोगे। अतः मैंने तुम्हें भविष्य के तीर्थंकर समझकर वंदन किया है। वंदन करके भरत चक्रवर्ती तो चले गये। परंतु मरीचि के मन में अहंकार उत्पन्न हो गया! मेरा कुल कितना उत्तम है? प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव मेरे कुल में हुए, प्रथम चक्रवर्ती भी मेरे कुल में मेरे पिताश्री भरत हुए और प्रथम वासुदेव भी मैं बनूंगा। इस प्रकार मन में कुल का मद लाकर मरीचि नाचने लगा, इससे नीचगोत्र कर्म का बंध किया। उसकी आलोचना नहीं की। अतः इस नीच गोत्र कर्म का भार लगभग एक को कोड़ाकोड़ी सागरोपम अर्थात् भगवान महावीर के अंतिम भव तक चला।

एक बार जब मरीचि के उपदेश से राजकुमार कपिल दीक्षा लेने को तैयार हुआ। तब मरीचि ने कहा कि ''जाओ, मुनियों के पास जाकर दीक्षा लो।'' उस समय कपिल ने पूछा कि, ''क्या मुनियों के पास ही धर्म है और आपके पास नही है?'' तब मरीचि ने विचार किया कि यह मेरे योग्य ही शिष्य मिला है और बीमारी आदि में शिष्य की जरूरत भी रहती है। अतः उसने असत्य वचन बोल दिया-अरे कपिल! धर्म वहां भी है और यहां भी। यह असत्य वचन उत्सूत्र था, क्योंकि त्रिदंडीपने में धर्म नहीं था। इस असत्य उत्सूत्र वचन की आलोचना नहीं की, अतः तीर्थंकर की आत्मा होते हुए भी एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम जितना उनका संसार बढ़ गया। जैन दर्शन ने किसी के भी पाप का पक्षपात नहीं किया। सब की जीवन-किताब खुली रखी है। इसलिये हमें शुद्ध आलोचना कहकर पाप मुक्त होना चाहिये।

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

5 आर्द्रकुमार का दृष्टां

अभयकुमार ने मित्रता के कारण आर्द्रकुमार को तीर्थंकर भगवान की प्रतिमा भेजी थी।
उस प्रतिमा के चिंतन द्वारा जातिस्मरण ज्ञान हुआ और उसमें साधुजीवन में की हुई भूल का दृश्य दिखाई दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आर्द्रकुमार पूर्व भव में सोमादित्य नामक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम बंधुमती था। एक बार वैराग्य भाव में आकर उसने अपनी पत्नी के साथ आचार्यदेव श्री सुस्थितसूरीश्वरजी म.सा. के पास दीक्षा ग्रहण की। उसके पश्चात् स्वयं की (भूतपूर्व पत्नी) साध्वी को देखकर पूर्व की काम-क्रीड़ा का स्मरण हो गया। अहो ! वास्तव में काम वासना कितनी बलवान है? साधुपना स्वीकार करने के पश्चात् भी वह वासना भड़कने लगी। जैसे-जैसे दिन व्यतीत होने लगे, वैसे-वैसे स्नेह बढ़ने लगा।

बंधुमती साध्वीजी को यह पता चला कि मुनिराजश्री मेरे निमित्त से रोज पाप बांधते हैं। अतः अनशन कर जीवन का अंत कर लूं। जिससे मेरे निमित्त से उनको पाप तो नहीं बंधेगा। इस प्रकार भाव दया का चिंतन करके गुरुदेव की अनुमति लेकर अनशन करके शुभ भाव में काल कर वह साध्वीजी देवलोक में गई। महान आत्मायें दूसरों को पाप से बचाने हेतु स्वयं भारी से भारी कष्टों को झेलती रहती हैं। जैसे कि बलदेव मुनि ने

पनिहारी के अविवेक को देखकर जीवनभर जंगल में ही रहने का निर्णय कर लिया। जब सोमादित्य मुनि को यह मालूम हुआ कि उसके कारण साध्वीजी ने अनशन कर देह त्याग किया है, तब सोमादित्य मुनि को खूब आघात पहुंचा। ओह! साध्वीजी की कितनी हिम्मत और कैसी अद्भुत वीरता से उनका आत्मबलिदान! मैं कैसा नीच? जिसने भाव से व्रत का भंग कर दिया और जो एक साध्वी के कालधर्म (मृत्यु) का हेतु बना। मेरे जैसे पापी को जीने का क्या अधिकार है? अब पापों को नाश करने के लिए मैं भी अनशन स्वीकार कर लूं। इस प्रकार विचार कर अनशन करके मुनिश्री मरकर देवलोक में गये। परन्तु मोहनीय कर्म के उदय से आलोचना-प्रायश्चित लिये बिना मर गए। अतः देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर अनार्य देश में जन्म लिया, जहां धर्म का अक्षर भी सुनने को न मिले।

श्रेणिक राजा और आर्द्रकुमार के पिताश्री दोनों अच्छे मित्र थे। इस कारण वे एक-दूसरे को कीमती उपहार भेजते थे। यह देखकर अभयकुमार के साथ मित्रता बांधने के लिये आर्द्रकुमार ने उसे भेंट भेजी। उसे भव्य भेंट समझकर अभयकुमार ने भी मित्रता बांधने के लिये ऋषभदेवजी भगवान की प्रतिमा मंजूषा में उसे भिजवाई और संदेश में कहलाया कि इस मंजुषा को एकांत में खोलना। रत्नमयी प्रतिमा के दर्शन करने से पूर्वभव में विराधित साधु जीवन का स्मरण होने से उसे वैराग्य आया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आर्द्रकुमार ने दीक्षा लेने का संकल्प किया। माता-पिता के पास आर्यदेश में जाने की आज्ञा मांगी। मोहवश माता-पिता ने सख्ती से इन्कार कर दिया और वह भाग न जाये, इसलिये राजा ने पाँचसौ सिपाहियों को उस पर नज़र रखने के लिये आज्ञा की। आर्द्रकुमार को यह परिस्थिति कैद-सी लगने लगी। उसने धीरे-धीरे वर्तन-वाणी के माधुर्य के द्वारा ५०० सिपाहियों का विश्वास जीत लिया। एक दिन मौका देखकर वह घोडे पर सवार होकर अनार्य देश से रवाना हो गया। उसके बाद समुद्र मार्ग से जहाज में बैठकर आर्यदेश में आकर उसने दीक्षा ली और उसी समय देववाणी हुई कि, अरे ! आर्द्रकुमार अभी तेरे भोगावली कर्म बाकी है, परंतु भावोल्लास में आकर उसने देववाणी को सुनी अनसुनी कर दी।

संयम लेकर मुनि एक गाँव से दूसरे गाँव विहार करने लगे। एक बार मुनि आर्द्र वसंतपुर नगर में पधारे और उद्यान में काउस्सग्ग ध्यान में रहे। वहाँ बालिकायें खेलने के लिये आयी। खेल-खेल में बालिकायें उद्यान में स्तंभ को पकड़ कर कहती कि ये मेरा पति है। श्रीमती नाम की बालिका ने (जो पूर्वभव की पत्नी देवलोक से च्युत होकर धनश्री शेठ के यहाँ पुत्री रुप में जन्मी थी) अनजाने स्तंभ की तरह स्थिर रहे हुए मुनि को छूकर कहा कि यह मेरा पति है। फिर पता चला कि यह तो मुनि है। परंतु पूर्वभव के संस्कारों के कारण उसने घोषणा की, कि मैं विवाह करुंगी, तो इस मुनि के साथ ही करुंगी, अन्यथा कुंवारी रहूंगी। देवों ने १२.५ लाख

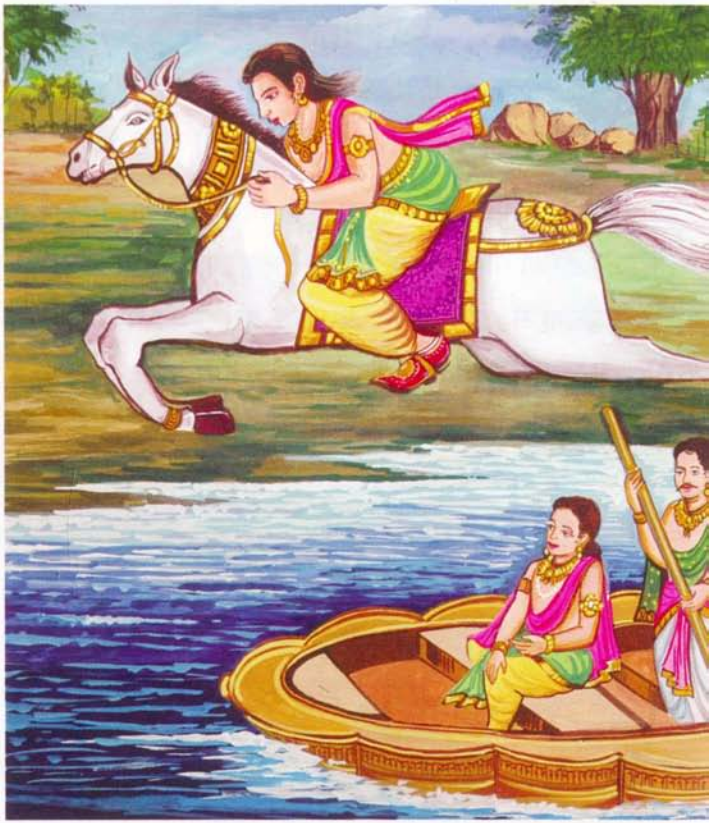

दीक्षा के लिए आर्द्रकुमार अनार्य देश में भागकर स्थलमार्ग और जलमार्ग के द्वारा आर्य देश में आए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोनामोहरों की वृष्टि की। पुत्री श्रीमती और धन लेकर उसके पिता धनश्री अपने गाँव गये। मुनि ने अन्यत्र विहार किया।

अब वह कन्या क्रमशः बड़ी हुई, तब उसके पिता योग्य वर की खोज करने लगे। परंतु उसने अपना दृढ़ निश्चय बताया कि मुनि को छोड़कर वह किसी के साथ शादी नहीं करेगी, तब गाँव में आने वाले मुनियों को गोचरी वहोराने के लिये उसे पिता ने कहा। १२ वर्ष बाद वही मुनि वहाँ पधारे। पादचिह्न से उसने मुनि को पहचान लिया। श्रीमती ने उनके पाँव पकड़ लिये। श्रेष्ठी और राजा ने उनके ऊपर बहुत दबाव डाला। जिससे मुनि ने भी देववाणी को याद कर उसके साथ विवाह के लिये स्वीकृति प्रदान की। विवाह हो गया। परंतु उनका दिल उदास रहा करता था। उन्हें संयम की तीव्र तमन्ना थी। उनको पुत्र हुआ। १२ वर्ष के बाद एक दिन प्रबल पुरुषार्थ कर दृढ़ता से दीक्षा लेने का संकल्प श्रीमती को कहा। वह उदास होकर रुई कातने लगी। लड़का खेल कर घर आया और पूछा कि, ''माँ तू रुई क्यों कात रही है?'' माता श्रीमती ने कहा, तेरे पिताश्री दीक्षा लेनेवाले है। बालक ने सूत के धागों से पिताश्री के दोनों पाँवो को बारह बार लपेट दिया और तोतली भाषा में कहा कि, अब दीक्षा लेने कैसे जाओगे? मैंने तो आपको बांध दिया है। आर्द्रमुनि का हृदय बालवचन से पिघल गया। उसने आँटी गिनी, तो बारह थी। इसलिये दूसरे १२ वर्ष गृहवास में रहें।

इस प्रकार २४ वर्ष गृहवास सेवन करने के पश्चात् पुत्र उमर लायक हो जाने से पुनः चारित्र ग्रहण कर आर्द्र मुनि बने। दूसरी तरफ ५०० सिपाही जो आर्द्रकुमार को ढूंढ़ने निकले थे। वे राजा के डर से वापस अनार्य देश में नहीं गये। परंतु वहीं रहकर चोरी करने लगे। एक दिन आर्द्रमुनि को वे विहार में मिले। उनको उपदेश देकर दीक्षा दी। उसके बाद ५०० मुनि के साथ मगधदेश में आर्द्रमुनि पधारे और वहाँ उत्कृष्ट साधना कर आर्द्रमुनि मोक्ष में गये। यद्यपि आर्द्रकुमार ने पूर्वभव में कायिक पाप नहीं किया था। सिर्फ मानसिक पाप ही किया था, तथापि आलोचना नहीं लेने से पापों के गुणाकार हो गये, जिससे अनार्य देश में जन्म और दीक्षा लेने के बाद २४ वर्ष तक गृहवास में रहना पडा। यूं तो इस भव में आत्मा की शुद्धि हो जाने से आर्द्रकुमार मोक्ष में गये, परंतु बीच में कितनी तकलीफें पड़ी। अतः हमें शुद्ध भाव से आलोचना करनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

6 मेतारज मुनि, नीचगोत्र और दुर्लभबोधिता...

उज्जयिनी नगरी में मुनिचन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। उसका पुत्र और पुरोहित पुत्र सौवस्तिक दोनों अत्यंत उच्छृंखल हो गये। कोई भी साधु महाराज वहां आते, तब वे उन्हें राजमहल में ले जाकर परेशान करते। हंटर मार कर नृत्य करवाते। श्रीसंघ ने राजा के पास जाकर शिकायत की, किंतु राजा ने उस पर ध्यान नहीं दिया। तब मुनियों ने यह बात सागरचन्द्र मुनि से कही। यह सुनकर सागरचन्द्र मुनि को विचार आया कि यदि उज्जयिनी नगरी में मुनिराजों का विहार बंद हो गया, तो लोग धर्म से विमुख होकर दुर्गति में पड़ेंगे। अतः इसका कोई उपाय करना चाहिए। इस प्रकार विचार करके वे उज्जयिनी आये। गोचरी के लिये राजदरबार में गये। राजपुत्र और पुरोहितपुत्र ने नृत्य करने के लिए खूब जबरदस्ती की और कहा कि बहुतों को चाबुक मारकर हम नृत्य करवा चुके हैं। इस प्रकार दोनों युवको ने धर्म की उपेक्षा की है। ऐसा जानकर उनको सुधारने के लिये सागरचंद्र मुनि ने उनको कहा कि नाचने के लिये बजाने वाले चाहिये और बजाने वाले भूल करेंगे, तो मेरा दिमाग चढ़ जायेगा। उस समय जो सज़ा करुंगा, वह उन्हें स्वीकार करनी पड़ेगी। तब दोनों ने कहा कि हमें बजाना नहीं आता और मुनि को कहा कि आपको मल्लयुद्ध करना पड़ेगा। दोनों मुनि के साथ मल्लयुद्ध करने लगे। मल्लयुद्ध करते-करते दोनों कुमारों के संधिस्थानों से हड्डियाँ उतार कर सागरचन्द्र मुनि वहाँ से चले गये। स्वस्थान पर जाकर काउस्सग्ग में खड़े रह गये। इधर दोनों कुमार वेदना से चीखने लगे। राजा ने सिपाहियों के द्वारा साधु भगवंत की खोज करवाई। गांव के बाहर मुनि ध्यान में खड़े हैं, ऐसा सिपाहियों ने कहा। तब राजा वहाँ गया। जाकर देखा, तो खुद के सांसारिक भाई खड़े थे। राजा ने कहा कि ''अरे गुरुदेव! यह क्या किया?'' मुनि ने राजा से कहा-''अरे राजन्! क्या अपने कुल में मुनि को मारने का अन्याय हो सकता है? इतने दिनों तक तुमने संघ की बात स्वीकार नहीं की और अब पुत्र को ठीक करने के लिए आज यहां विनती करने आए हो। राजन्! तूने ऐसे महामुनियों का अपमान व विडंबना चला ली, तुमने यह बड़ी भारी भूल की है।'' राजा ने कहा कि ''गुरुदेव! ये कुमार बालक हैं। अतः इनका अपराध क्षमा कीजिए! पुनः ऐसा न होगा।'' मुनि ने कहा कि- ''चारित्रधारी आत्माओं को सता कर इन्होंने भयंकर कर्म बांधे हैं। अतः यदि ये दोनों चारित्र ग्रहण करें, तो दोनों की हड्डियाँ यथास्थान चढ़ा दूंगा, अन्यथा वे दोनों अपने किए हुए पापों का फल भुगतते रहे।''

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा मुनि को नमस्कार करके पुत्र के पास आया और कहने लगा कि, हे कुमारों! वे मुनि तुम्हारे सांसारिक चाचाजी हैं। तुमने साधुओं को खूब परेशान किया है। अतः तुम्हें दंड़ दिया है। यदि दीक्षा लोगे, तो हड्डियाँ चढ़ा देंगे, अन्यथा तुम अपने आप ही तड़प-तड़पकर मर जाओगे, लेकिन मुनि भगवंत हड्डियाँ नहीं चढायेंगे। यह सुनकर कुमारों ने राजा की बात बिना इच्छा से मंजूर करते हुए कहा कि, '' हम दीक्षा ले लेंगे।'' मुनि ने हड्डियाँ यथास्थान पर चढ़ा दी और दोनों ने चारित्र ग्रहण किया। चारित्र की शुद्ध आराधना करने लगे। भूतपूर्व पुरोहितपुत्र मुनि ने ब्राह्मण कुल का होने के कारण मल और मलिन वस्त्रों से घृणा की। इस प्रकार की जुगुप्सा करने से मिथ्यात्व गुणस्थानक पर आकर नीच गोत्र को बांध दिया। उसी तरह एक बार उसी मुनि को विचार आया कि ''गुरुमहाराज ने जबरदस्ती से दीक्षा दी है, वह ठीक नहीं किया।'' इस प्रकार उपकारी गुरु का दोष देखा। इस विचार से उसका दुर्लभबोधि कर्म का बंध हो गया। उसके बाद उस मुनि ने दोनों दोषों की आलोचना नहीं ली। पाप वैसा का वैसा ही आत्मा में रह गया। दोनों चारित्र पाल कर देवलोक में गए। पुरोहित पुत्र ने मलिन वस्त्र की घृणा करने से नीच गोत्र बांधा था। अतः देवायुष्य पूर्ण होने पर एक चंड़ाल पत्नी की कुक्षि में उसका च्यवन हुआ।

इधर एक सेठ के घर पर सेठानी के मरे हुए बालक जन्म पाते थे। अतः उसका मन खिन्न रहता था। चंड़ालिनी ने उसकी खिन्नता का कारण पूछा, तब उसने कहा कि ''मेरे मरे हुए संतान जन्म पाते हैं। आज तक एक भी पुत्र को वात्सल्य नहीं दे सकी हूं।'' चंडालिनी ने कहा कि ''मेरे पुत्र जिन्दे जन्म लेते हैं।'' अतः सेठानी ने कहा कि मैं तुझे सोनामोहरें दूंगी। पुत्र जन्म के अवसर पर हम परस्पर संतान परिवर्तन कर लेंगे। इस प्रकार निर्णय कर दोनों ने जन्म के समय पुत्र अदल-बदल कर दिया। और उसका नाम मेतारज रखा। एक बार की घृणा ने मेतार्य के जीव को चंडाल के घर में जन्म दिया।

१) सागरचंद्र मुनि राजपुत्र और पुरोहितपुत्र के संधिस्थानो से हड्डियाँ उतार कर चले गए।

२) राजा गाँव के बाहर मुनि के पास गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाज पक्षी को जौ चुगते हुए मुनि ने देख लिया

मेतारज मुनि उपसर्ग को सहन करते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये।

यदि पूर्वभव में दोनों दोषों की आलोचना ले ली होती, तो जीव शुद्ध हो जाता और चंडाल के घर में उत्पन्न होने की परिस्थिति खड़ी नहीं होती। अब आनंद से मेतार्य सेठ के घर बड़ा होने लगा। उसके जीव ने देवलोक में मित्रदेव को प्रतिज्ञा करवायी थी कि तुं मुझे डंडे मारकर भी दीक्षा दिलवाना। धीरे-धीरे मेतारज युवा हुआ। उसकी सगाई ८ श्रेष्ठिकन्याओं के साथ हुई। जब शादी की तैयारियाँ चल रही थी, तब देव ने अवधिज्ञान से सब जाना और वह मेतारज मित्र को समझाने आया। परंतु दुर्लभबोधि हो जाने से वह नहीं समझा। फिर शादी के वरघोड़े में देव ने चंडाल का रुप धारण करके विवाह में विघ्न डाला। उसके बाद मेतारज की आजिज़ी से ८ श्रेष्ठिकन्या और ९वीं राजकन्या श्रेणिक राजा की पुत्री के साथ विवाह करवाया। परंतु दुर्लभबोधि कर्म के उदय से वह प्रतिबोधित न हुआ। १२ वर्ष के बाद फिर से देव उसे प्रतिबोध करने आया, तो उस समय भी उसी कर्म के उदय के कारण अपनी पत्नियों के पास उसने १२ वर्ष की मुद्दत मंगवायी। फिर वह कर्म हल्का हो जाने से प्रतिबोध पाकर चारित्र लेकर मेतारज मुनि मासक्षमण के पारणे के दिन सोनी के घर गोचरी गये।

धर्मलाभ सुनकर सोनी अपना सभी काम छोड़कर खड़ा हो गया। वह श्रेणिक राजा के लिये सुवर्ण के १०८ जौ बना रहा था। मुनि को गोचरी वहोराने के लिये रसोईघर में ले गया। बाद में बाज पक्षी ने वहाँ आकर सारे जौ चुग लिये। मुनि ने जौ को चुगते हुए पक्षी को देख लिया। पक्षी उड़कर ऊँचाई पर बैठ गया। मुनि गोचरी लेकर बाहर निकले।

सोनी ने खुद के काम पर आकर देखा, तो सुवर्ण के जौ दिखाई नहीं दिये। सोनी को शंका हुई कि मुनि ही लेकर गये होंगे। इसलिये वह मुनि के पास आया। बारबार पूछने पर भी जीवदया के विचार से मुनि ने उसका जवाब न दिया। मुनि मौन रहे। अगर सत्य कह देते, तो बाज पक्षी को चीरकर सोनी जौ निकाल लेता। अतः सोनी ने क्रोध में आकर आर्द्र चमड़े को सिर पर बाँध कर मुनि को धूप में बैठा दिया। धूप के कारण चमड़ा सूखने से सिर की नसें खिंचने लगी। मुनि की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आँखे बाहर निकल गयी। खून निकलने लगा। हड्डियाँ टूटने लगी। मुनि ने क्रोध नहीं किया, समता रखकर केवलज्ञान प्राप्त किया। मुनि मोक्ष में गये। उस समय लकड़े का गठ्ठर गिरने से आवाज होने पर घबरा कर बाज पक्षी ने विष्टा की। उसमें सोनी को जौ देखे। यह देखकर सोनी घबरा गया कि यह मुनि तो निर्दोष है और राजा के भूतपूर्व दामाद है। इस निर्दोष मुनि का मैंने खून कर दिया। अब राजा मुझे शंकर सज़ा करेंगे, इसलिये उसने भगवान महावीर स्वामी के पास जाकर दीक्षा ली और वह आलोचना लेकर सद्गति में गया।

अब यह विचारना चाहिये कि यदि पूर्वभव में मेतारज ने गुरु के दोष देखने की आलोचना ले ली होती, तो दुर्लभबोधि न बनते और ऐसी विंडबनाएँ न होती। ऐसा जानकर हमें गुरु के दोष देखने की आलोचना तुरंत ले लेनी चाहिये। मुनि का हत्यारा सोनी मुनि बन आलोचना लेकर सद्गति में गया। अतः हम आलोचना लेना न भूलें।

7 चित्रक और संभूति चंडाल बने...

जंगल से एक मुनि गुज़र रहे थे। रास्ता भूल जाने के कारण दोपहर के समय बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े। गाय चराने के लिए आये हुये चार ग्वालों ने इस दृश्य को दूर से देखा। वे नज़दीक आये। मुनि बेहोश थे। होठ सूख गए थे। चेहरा कुम्हला गया था। तृषा का अनुमान कर उन्होंने गाय को दुहकर मुँह में दूध डाला। इससे मुनि होश में आये। कुछ समय के बाद मुनिश्री ने चारों को समझाने का प्रयास करते हुए कहा कि संसाररूपी जंगल में उनकी आत्मा भटक रही हैं। उस दुःख से पार उतरने के लिये एकमात्र साधन है चारित्र धर्म। इस प्रकार का बोध दिया। चारों ने प्रतिबोध पाकर चारित्र ग्रहण किया। उनमें से दो आत्माएं तो उसी भव में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चली गई।

शेष दो जनों को एक विचार आया कि स्नान किये बिना शुद्धि किस प्रकार से हो सकती है? क्या इतने मैले कपड़े रखने? इस प्रकार घृणा करने से नीच गोत्र कर्म बांध दिया। उसकी आलोचना लिये बिना ही काल कर गये। बाद में क्रम से पूर्व भव में बांधे हुए नीच गोत्र के उदय से चंडालकुल में चित्रक व संभूति के रूप में उत्पन्न हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युवा-अवस्था में सुरीला और मधुर कंठ होने से लोग उनके संगीत में मशगूल बन जाते थे। गीत-संगीत के रसिक महिलाओं के झुंड के झुंड उन दोनों का संगीत सुनने के लिये आते थे। अनर्थ का कारण जानकर राजा ने उनको देश-निकाल किया। दोनों पहाड़ पर से कूदकर आत्महत्या करने का विचार कर रहे थे। इतने में तो मुनि ने उनको मानव जीवन की महानता समझाई, जिससे दोनों भाईयों ने दीक्षा ली। गाँव-गाँव विहार करने लगे।

दो मुनियों में से संभूति मुनि को वंदन करते करते चक्रवर्ती सनतकुमार की पट्टरानी के सुकोमल केश छू जाने पर संभूति मुनि ने नियाणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक बार दोनों मुनि हस्तिनापुर आये। वहाँ मासक्षमण के पारणे में दोनों मुनि गोचरी गये थे। तब पूर्व-अवस्था के वैर का स्मरण होने से चक्रवर्ती सनत्कुमार के मंत्री नमुचि ने खुद के गौरव की रक्षा के लिये सिपाहियों के द्वारा दोनों मुनियों को गाँव के बाहर निकलवा दिये। संभूति मुनि क्रोध में आकर उसके ऊपर तेजोलेश्या छोडने को तैयार हुए। मुख में से धुआँ निकलने लगा। लोग घबरा गये। सनत्कुमार चक्रवर्ती ने मुनि के पास आकर माफी मांगी और मंत्री के पास भी माफी मंगवायी। चित्रक मुनि के बहुत समझाने पर संभूति मुनि ने सब को क्षमा तो किया, लेकिन दोनों मुनि ने विचार किया कि इस देह के कारण कषायादि करने पड़ते हैं, इसलिये हम दोनों अनशन कर लें। दोनों मुनि जंगल में अनशन करने लगे। अब लोग दोनों मुनि की खूब प्रशंसा करने लगे। यह सुनकर सनत्कुमार की पत्नी स्त्रीरत्न सुनंदा १ लाख ९२ हजार परिवार के साथ दोनों मुनि को वंदन करने आयी। वंदन करते-करते सुनंदा के केश संभूति मुनि के पाँव को छू गये। उस केश के स्पर्श से संभूति मुनि को अत्यंत राग उत्पन्न हुआ और नियाणा किया कि संयम का फल स्त्रीरत्न, परभव में मुझे मिले। चित्रक मुनिने उनको बहुत समझाया। लेकिन उन्होंने आलोचना न ली, बल्कि कहा कि, मैंने दृढ़ मन से नियाणा किया है, वह फिरने वाला नहीं । इसलिये आप अब मुझे कुछ मत कहना। यह सुनकर चित्रक मुनि शांत रहे। फिर दोनों मुनि काल करके देवलोक में गये। उसके बाद चित्रक का जीव पुरिमताल नगर में श्रेष्ठिपुत्र बना और संभूति मुनि का जीव कांपिल्यपुर में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बना और मरकर सातवीं नरक में गया।

यदि उसने आलोचना ले ली होती, तो सातवीं नरक के योग्य कर्म बंध न होता। अतः हमें अवश्य आलोचना लेनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8 पूर्वभव में इलाचीकुमारने आलोचना न ली...

१) अग्निशर्मा मुनि आलोचना लिए बिना मरकर देवलोक में गए।
२) साध्वीजी ब्राह्मणकुल के अभिमान व पाँव आदि धोने की आलोचना लिए बिना मरकर देवलोक में गए।

वसंतपुर नगर में अग्निशर्मा नामक ब्राह्मण युवक रहता था। उसने अपनी पत्नी के साथ चारित्र लिया। परन्तु परस्पर मोह नहीं टूटा।

उसकी भूतपूर्व पत्नी साध्वी ने एकबार ब्राह्मणकुल का अभिमान किया। उसकी आलोचना लिए बिना ही वह मर कर देवलोक गई। मुनिश्री भी काल करके देव-लोक गये। वहां से मृत्यु पाकर अग्निशर्मा का जीव इलावर्धन नगर में धन्यदत्त सेठ के पुत्र इलाचीकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ। पूर्व भव की उसकी पत्नी का जीव कुलमद की आलोचना न लेने के कारण नीच कुल में नट की पुत्री के रूप में उत्पन्न हआ। इलाचीकुमार को पूर्वभव में पत्नी साध्वी के ऊपर स्नेह था व उसकी आलोचना नहीं ली थी। अतः इलाचीपुत्र उत्तमकुल में उत्पन्न होने पर भी लोक लज्जा छोड़कर नटनी के नाच को देखकर उसके साथ गया।

इलाचीपुत्र नटनी को रस्सी पर नाचते हुए देखकर उस पर मोहित हो गया।

इलाचीकुमार ने एक दिन नटराज को कहा कि, ''अब मैं नट हो गया हूँ, तो मेरे साथ नटनी का विवाह कर दीजिये।'' नटराज ने कहा कि, ''तुम राजा के पास से इनाम प्राप्त करो, तो तुम्हारे साथ उसका विवाह करुंगा।'' उसके बाद एक दिन बेनातट के बंदरगाह पर कला देखने के लिये राजा को आमंत्रण दिया गया। नटनी ढोल बजाने लगी। इलाचीपुत्र ने रस्सी पर नाचना शुरु किया। लोगों ने नट की करामात देखकर तालियाँ बजाई। हर्ष से किलकारियाँ करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगे परंतु राजा की दृष्टि नटनी पर पड़ी और वह नटनी पर मोहित हो गया। जिससे राजा ने उसे इनाम न दिया। फिर से दूसरी बार, तीसरी बार खेल बताने के लिये कहा। चौथी बार रस्सी पर चढ़ा, परंतु राजा नटनी पर मोहित हो जाने से इलाचीकुमार की मौत चाहता था। इस कारण इनाम न दिया। रस्सी पर चढ़े हुए उसने एक महल में देखा, तो एक पद्मिनी स्त्री मुनि को मिठाई वहोरने के लिये बिनति कर रही थी और जितेन्द्रिय मुनि आँख की पलक भी ऊंची किये बिना ना-ना कह रहे थे। यह देखकर इलाचीकुमार को

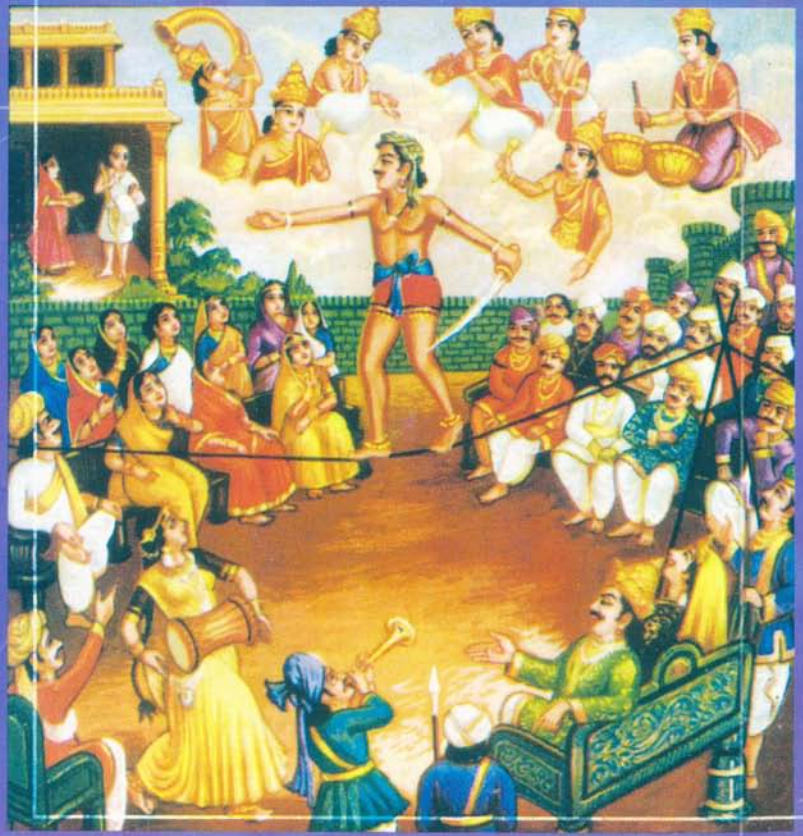

रस्सी पर नाचते हुए इलाचीकुमारने महल में मुनि को देखा और अहोभाव बढ़ने से इलाचीकुमार को केवलज्ञान हो गया।

अपनी कामवासना के ऊपर फटकार और मुनि के ऊपर अहोभाव जगा। अहोभाव बढ़ते-बढ़ते शुक्लध्यान पर चढ़े हुए इलाचीकुमार ने रस्सी पर ही केवलज्ञान प्राप्त किया। देवों ने साधुवेष अर्पण कर वंदन किया। इलाचीपुत्र केवली ने देशना दी। उसमें उन्होंने कहा कि खुद मैंने पूर्व के तीसरे भव में आलोचना न ली और नटनी के जीव ने भी आलोचना न ली, जिससे यह सारी विडंबनाए हुई। यह सुनकर नटनी को भी जातिस्मरण ज्ञान हुआ, साथ ही तीव्र पश्चाताप हुआ और उसने भी केवलज्ञान प्राप्त किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

9 कमलश्री कुत्ती, बंदरी बनी...

शिवभूति और वसुभूति दो भाई थे। शिवभूति की स्त्री कमलश्री अपने देवर वसुभूति के प्रति राग वाली बनी और उसने मोहवश अनुचित याचना की। भाभी के ऐसे अनुचित वचनों को सुनकर वसुभूति विचार करने लगा कि– ''ओह ! धिक्कार हो कामवासना को, जो ऐसी अनुचित याचना करवाती है। मुझे तो, किसी भी हालत में कामाधीन नहीं होना है।'' इस प्रकार वैराग्य उत्पन्न होने पर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। यह बात कमलश्री तक पहुँची। राग के उदय से आर्तध्यान में रहती हुई वह मानसिक और वाचिक पाप की आलोचना लिए बिना ही शुनी (कुत्ती) के रूप में उत्पन्न हुई।

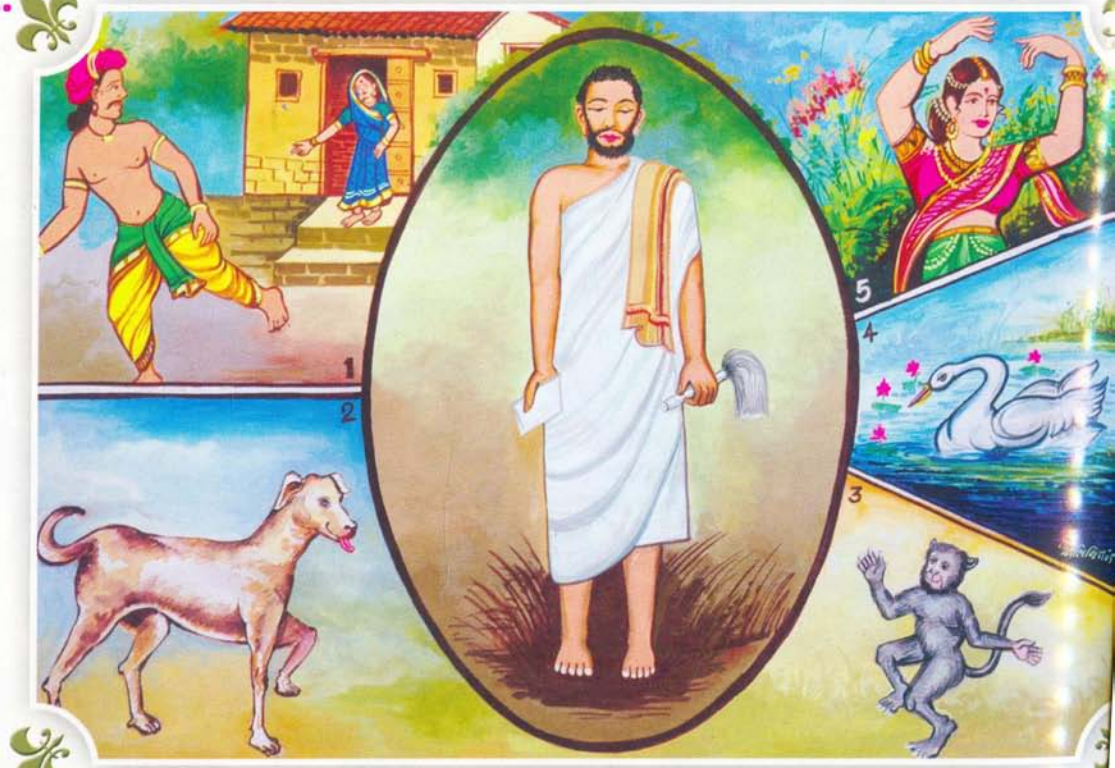

१) कमलश्री को अपने देवर वसुभूति के ऊपर राग हो गया। उसकी आलोचना न लेने से क्रमश : २) कुत्ती ३) बंदरी ४) हंसिनी ५) अंत में व्यंतर देवी बनी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक बार वसुभूति मुनि गोचरी के लिये जा रहे थे। कुत्ती की दृष्टि मुनि पर पड़ी। पूर्वभव के राग के कारण वह मुनि की छाया के समान उनके साथ-साथ चलने लगी। हमेशा मुनि के साथ कुत्ती को देखकर जहां भी मुनि जाते, लोग उनको शुनीपति (कुत्ती पति) मान कहने लगे। लोगों के ऐसे वचन सुनकर मुनि लज्जित होने लगे। एक दिन मुनि किसी भी तरीके से कुत्ती की दृष्टि से बचकर अन्यत्र चले गए। मुनि को न देखने पर कुत्ती आर्तध्यान से मरकर जंगल में बन्दरी बनी।

पूर्ववत् बन्दरी मुनि को देखकर मुनि के साथ-साथ घूमने लगी। लोग मुनि को बन्दरीपति कहने लगे। जब लोग ऐसा कहते, तब बन्दरी खुश होती और विषय की चेष्टा करती। एक बार मुनि बंदरी की नज़र से बचकर अन्यत्र चले गए। बंदरी आर्तध्यान में मरकर तालाब में हंसिनी बनी।

संयोगवशात् मुनि उस तालाब के किनारे शीत परिषह सहन करने के लिए काउस्सग्ग कर रहे थे। उन्हें देखकर हंसिनी अव्यक्त रीति से मधुर शब्द व विरह वेदना की आवाज़ करने लगी और पास में आकर आलिंगन करने लगी। मुनि तो शुभ ध्यान में स्थिर रहे। हंसिनी की दृष्टि से बचकर मुनि अन्यत्र विहार कर गए। मुनिश्री को न देखने पर हंसिनी व्यंतर निकाय में देवी के रूप में उत्पन्न हुई।

विभंग ज्ञान से स्वयं के साथ मुनिश्री का संबंध जान कर वह देवी विचार करने लगी कि मेरे देवर ने मेरा कहना नहीं माना। अतः मेरी यह दुर्दशा हुई है। अब वह क्रोध से आगबबूली होकर मुनि को मारने आयी। परंतु मुनिश्री के तप के प्रभाव से वह मार न सकी। जिससे दूसरे अनेक अनुकूल उपसर्ग करने लगी, परन्तु मुनि अपने व्रत में दृढ़ रहे और उन्होंने शुभध्यान के प्रताप से केवलज्ञान प्राप्त किया। सब लोगों के समक्ष केवली ने देवी के पूर्वभवों के संबंध का वर्णन किया। जिससे देवी ने सम्यक्त्व प्राप्त किया। मुनिश्री पृथ्वी पीठ को पावन करते हुये क्रम से मोक्ष सिधाये।

अब इस तरह सोचना चाहिए कि एक ही घर में केवल खराब दृष्टि रखने से और उसकी आलोचना न लेने से कितना भयंकर परिणाम हुआ कि तीन-तीन भव तिर्यंचगति में जन्म लेना पड़ा। इसलिये अगर हम अपने जीवन में हुए पापों की शुद्धि नहीं करेंगे, तो अपनी क्या दशा होगी? अतः आलोचना लेने में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१) राजकुमार रुपसेन और राजकुमारी सुनंदा ने एक दूसरे को विकारमय दृष्टि से देखा।

२) राजकुमार रुपसेन मकान की दीवार गिरने से उसीके नीचे दबकर मर गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

10 रूपसेन के ७ भव बिगड़े...

पृथ्वीभूषण नगर में कनकध्वज राजा की पुत्री का नाम सुनंदा था। राजकुमारी ने यौवन के आँगन में पदार्पण किया। उसका रूप लावण्य और सौंदर्य गज़ब था। एक दिन राजभवन के सामने पानवाले की दुकान पर बंगदेश के राजा वासुदत्त का चौथा खूबसूरत पुत्र रूपसेन पान खाने आया। वह इधर-उधर देख रहा था।

इतने में सुनंदा की दृष्टि रूपसेन पर पड़ी। दृष्टि पड़ते ही उसके रोम-रोम में काम की ज्वाला धधक उठी। दासी के द्वारा सुनंदा ने रूपसेन को अपने अभिमुख किया। आँखों-आँखों से बात हो गई। सुनंदा ने दासी के द्वारा रूपसेन को कहलाया कि, ''आप कौमुदी महोत्सव के प्रसंग पर राज-महल के पीछे के भाग में पधारना।''

कौमुदी महोत्सव के दिन माया-कपट करके सुनंदा ने सिर-दर्द का बहाना बनाया और राजदरबार में स्वयं की दासी के साथ रह गई। राजा-रानी परिवार सहित गाँव के बाहर महोत्सव देखने चले गए। कैसी भयंकर है वासना? जिसके कारण सुनंदा असत्य बोली व उसने माया की। इसी प्रकार रूपसेन भी माया और असत्य से बहाना बना कर घर में ही रह गया। शेष परिवार महोत्सव में चला गया।

रूपसेन स्वगृह पर ताला लगाकर सुनंदा से मिलने के मनोरथ से घर से निकल पड़ा। आँख के दोष से प्रेरणा पाकर कायिक दोष सेवन की इच्छा से वह मन में सुनंदा के रूप, लावण्य और उसके संगम के विचारों को लेकर हर्षित होता हुआ रास्ते से गुज़र रहा था। इतने में एक जीर्ण मकान की दीवार उस पर गिर पड़ी। वह उसी के नीचे दब कर मर गया। कैसी भयंकर विचार श्रेणी में मरा? मिला कुछ भी नहीं। परन्तु वह जीव राग दशा को बढ़ाकर पाप बांध कर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इधर रात्रि के समय नगर में शून्यता जान कर महाबल नामक जुआरी, चोरी करने के लिए निकल पड़ा। घूमते-घूमते उसने राजभवन के पृष्ठ भाग में लटकती हुई रस्सी की बनी सीढ़ी देखी। राज भवन में प्रवेश का यह सुन्दर साधन है। यह मान कर वह चढ़ने लगा। सुनंदा की दासी रस्सी की आवाज़ से विचार करने लगी कि जिस रूपसेन को संकेत किया था, वही आया होगा। इतने में रानी ने स्वयं की दासियों को राजकुमारी का स्वास्थ्य पूछने के लिए भेजा। वे भवन की तरफ आ रही थी। सुनंदा की दासी ने दीपक बुझा दिया। अन्तेवासी दासी ने स्वास्थ्य पृच्छा के लिए आयी हुई दासियों से कह दिया कि राजकुमारी को अब नींद आ गई है, इस प्रकार झूठ बोलकर रानी की दासियों को वापस भेज़ दिया। रस्सी की सीढ़ी से ऊपर चढ़कर महाबल राजमहल में प्रवेश करने लगा, तब दासी ने अंधकार में ही उसका सत्कार किया और स्वागत करते हुए मंद स्वर से कहा कि पधारिये रूपसेन ! आवाज़ मत कीजिये। पधारिये ! पधारिये ! जुआरी विचार करने लगा कि यहां न बोलने में नौ गुण हैं। अतः हूं-हूं करता हुआ सुनंदा के पास पहुंच गया और अंधेरे में ही कुकर्म करके चला गया। विधि की विचित्रता से दीवार से दब कर मरा हुआ रूपसेन का जीव सुनंदा की कुक्षि में ही उत्पन्न हुआ।

कुछ समय बीतने पर सुनंदा के शरीर पर गर्भवती के लक्षण दासियों को नज़र आने लगे। दासियों ने सुनंदा को क्षार आदि गर्भ गलाने की दवाइयाँ पिलाई, फलस्वरूप रूपसेन का जीव भयंकर वेदना प्राप्त कर कुक्षि से च्युत हो गया। वहां से मरकर वह सर्पिणी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ और काल क्रम से सर्प बना। इधर सुनंदा का विवाह क्षितिप्रतिष्ठित नगर के राजा के साथ हो गया। एक दिन राजा-रानी बगीचे में घूमने-फिरने के लिए गए। वहाँ अचानक (रूपसेन का जीव) सर्प आ पहुंचा। सुनंदा को देखते ही स्नेहवश सर्प की दृष्टि उस पर स्थिर हो गई। सर्प को इस प्रकार स्थिर दृष्टि वाला देखकर सुनंदा भयभीत हो गई। उसके पति ने सर्प को शस्त्र से मार डाला। सर्प आर्तध्यान में मर गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ से मरकर रूपसेन का जीव कौए के रूप में उत्पन्न हुआ। एक दिन बगीचे में राजा-रानी के साथ संगीत का आनंद ले रहा था। इतने में कौआ सुनंदा को देखकर रागवशात् जोर-जोर से हर्ष पूर्वक काँव-काँव करने लगा। अनेक बार उड़ाने पर भी वह पुनः पुनः आकर वहीं बैठ जाता था। राजा ने क्रोध में आकर उसे शस्त्र से मरवा दिया।

कौआ मरकर हंस के रूप में उत्पन्न हुआ। एक कौवे से उस हंस की मित्रता हो गई। एक दिन राजा और उसकी रानी सुनंदा एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। हंस की दृष्टि सुनंदा पर पड़ते ही उसे देखने में हंस मग्न हो गया। कौआ तो राजा के ऊपर विष्टा करके उड़ गया। राजा ने ऊपर हंस को देखते ही बाण मारकर उसे खत्म कर दिया। रूपसेन के भव में आत्मा ने आँख के पाप से मोह के संस्कार डाले थे। वे पीछे के भवो में उदित हुए और अंत में कुमृत्यु से मरना पड़ा।

वह हंस मरकर छट्ठे भव में हरिणी की कुक्षि में हरिण के रूप में उत्पन्न हुआ। एक बार राजा अपनी पत्नी के साथ जंगल में शिकार करने गया था। घोड़े पर सवार होकर राजा और रानी हरिण के पीछे दौड़े। हरिण तीव्र गति से दौड़ रहा था। इतने में उसकी दृष्टि सुनंदा के चेहरे पर पड़ी। दृष्टि पड़ते ही हरिण स्थिर हो गया। उसकी मांसल काया पर राजा ने बाण फेंका और हरिण का जीव मर कर हथिनी की कुक्षि में पहुंच गया।

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

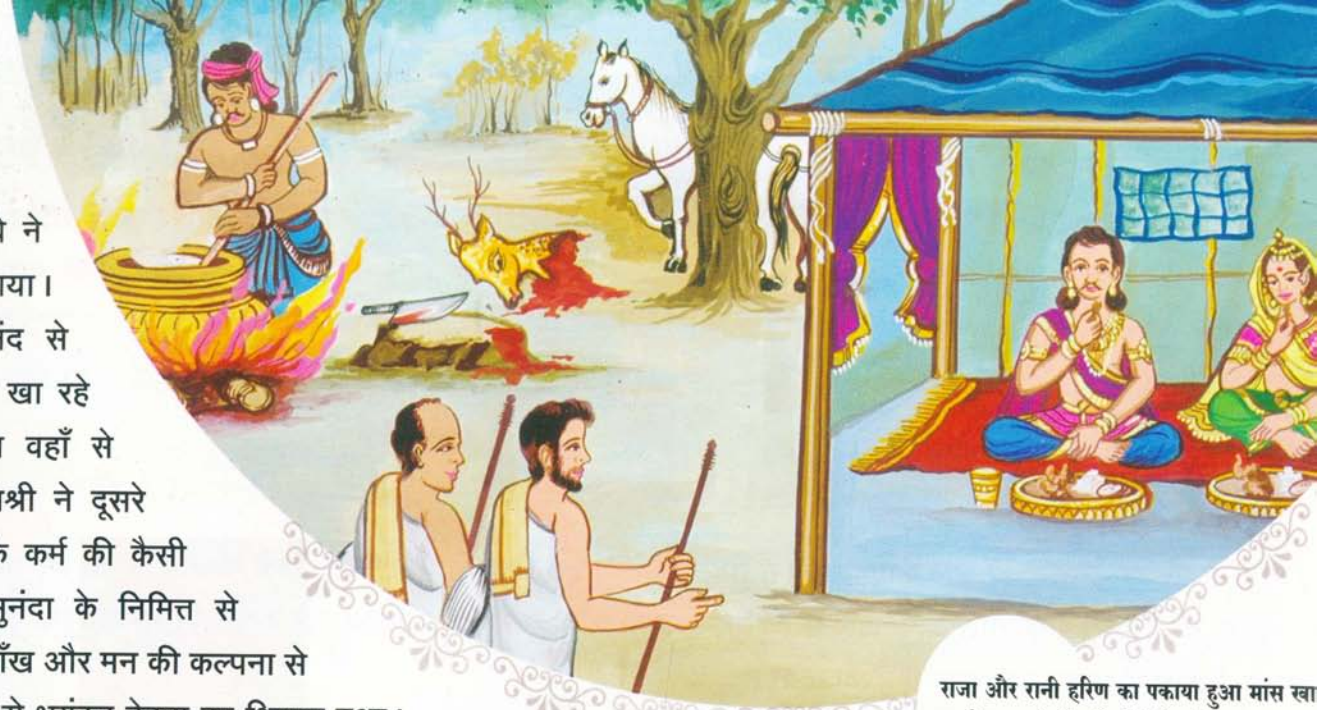

राजा और रानी हरिण का पकाया हुआ मांस खा
यह देखकर दोनों मुनिओंने सिर हिलाया।

राजा के रसोईये ने हरिण का मांस पकाया। राजा और रानी आनंद से प्रशंसा करते हुए मांस खा रहे थे। इतने में दो मुनि वहाँ से गुज़रे। एक ज्ञानी मुनिश्री ने दूसरे मुनिराजश्री से कहा कि कर्म की कैसी विचित्रता है? जिस सुनंदा के निमित्त से बेचारा रूपसेन केवल आँख और मन की कल्पना से कर्म बांधकर ७-७ भव से भयंकर वेदना का शिकार हुआ। वही सुनंदा उसका मांस खा रही है। इस प्रकार मंद स्वर से कहकर सिर हिलाया। यह देखकर राजा-रानी ने मुनिश्री से सिर हिलाने का कारण पूछा। तब मुनि ने सुनंदा को अभयदान देने के वचन पर स्पष्ट करते हुए कहा कि जिस रूपसेन के ऊपर सुनंदा को स्नेह था, उसी जीव का मांस सुनंदा खा रही है। अतः हमने आश्चर्य से सिर हिलाया। इस प्रकार मुनि के पास से हकीकत सुन कर सुनंदा को खूब आघात लगा। ओह गुरुदेव! मेरे प्रति आँख और मन के पाप करने वाले की ७-७ भव तक ऐसी दुर्दशा हुई है, तो मेरा क्या होगा? मैं तो उससे भी आगे बढ़कर कायिक पाप-पंक से मलिन बनी हुई हूँ। मुनिश्री ने कहा कि किये हुए अपराधों की आलोचना करके चारित्र लेने से आत्मा शुद्ध हो जाती है एवं मोक्ष प्राप्त कर सकती है। इत्यादि तात्त्विक उपदेश सुनकर सुनंदा ने दीक्षा ग्रहण कर ली। आलोचना का प्रायश्चित लेकर संयम का पालन करते हुए सुनंदा ने अवधिज्ञान प्राप्त किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुनंदा साध्वी एक बार अवधिज्ञान से रुपसेन के जीव को हाथी बना हुआ जानकर हाथी को प्रतिबोध देने के लिए जंगल में जा रही थी। तब गांव के लोगों ने उन्हें रोकने की कोशिश की, परन्तु साध्वीजी किसी की भी सुने बिना एक जीव को प्रतिबोध करने के लिए जंगल में गई। मदोन्मत्त हाथी की दृष्टि सुनंदा पर पड़ते ही वह चित्रवत् स्थिर हो गया। तब साध्वीजी ने कहा - ''बुज्झ-बुज्झ रूवसेण, अरे रूपसेन ! बोध प्राप्त कर, बोध प्राप्त कर।'' मेरे प्रति स्नेह रखने की वज़ह से तू इतने दुःखों का शिकार होने पर भी मेरे प्रति स्नेह को क्यों नहीं छोड़ता ? इस प्रकार के वचन सुनने से हाथी को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उसने पूर्व के ७ भवों की दुःखमय श्रृंखला देखी। वह खूब पश्चात्ताप करने लगा। अरर ! मैंने यह क्या कर दिया ? अज्ञान दशावश मोह के अधीन होकर आर्तध्यान में मरकर दुर्गति में गया। अब मुझे दुर्गति नहीं देखनी है। इस प्रकार विचार करते हुए हाथी मन में जागृत हुआ। साध्वीजी ने राजा को कहा कि अब यह हाथी तुम्हारा साधर्मिक है। इसका ध्यान रखना। हाथी बेले-तेले वगैरह तप करके देवलोक में गया।

इस कथा से हम समझ सकते हैं कि मन और दृष्टि का पाप कितना भयंकर होता है? उसकी आलोचना न ली, तो रूपसेन के ७-७ भव बिगड़ गए। आलोचना का कैसा अद्‌भुत प्रभाव है कि साध्वीजी सुनंदा गुरुमहाराज के पास पापों की शुद्धि करके साध्वी बनकर शल्यरहित शुद्ध संयम पालन कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गईं। अतः इस बात को आत्मसात् कर आलोचना लेकर शुद्ध बनना चाहिये।

सुनंदा साध्वीजी हाथी को प्रतिबोध दे रही है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

11 चंद्रा और सर्गनि क्रोध की आलोचना न ली...

दूसरे भव में अरुणदेव को शूली पर चढ़ना पड़ा और देवणी को कलाइयाँ कटवानी पड़ी।

वर्धमान नगर में सुघड नाम का कुलपुत्र था। उसकी चन्द्रा नाम की पत्नी थी। उससे सर्ग नाम का पुत्र था। घर में दरिद्रता होने से दोनों जने मज़दूरी कर जीवन चलाते थे। युवावस्था में ही सुघड़ की मृत्यु हो गई। एक दिन चन्द्रा किसी के घर काम करने बाहर गई हुई थी। वहाँ कामकाज ज्यादा होने से आने में देरी हो गई। इतने में उसका पुत्र जंगल से लकड़ी का गट्ठर लेकर आया। चारों ओर देखने पर भी भोजन दिखाई नहीं दिया। जिससे वह अत्याकुल हो गया। इतने में काम पूर्ण करके भूख और प्यास से व्याकुल चन्द्रा आ रही थी। तब क्रोध से धधकते हुए सर्ग ने कहा कि–''क्या तू कहीं शूली पर चढ़ने गई थी? इतनी देर कहाँ लगी?'' इतने कठोर और तिरस्कार पूर्ण शब्दों को सुनकर चंद्रा क्रोध से लाल–पीली होकर बोली – ''क्या तेरी कलाई कट गई थी कि जिसके कारण तुझे सीके पर से भोजन लेने में जोर पड़ता था?'' इस प्रकार के क्रोध मय वचनों को बोलकर आलोचना नहीं ली। शास्त्र में कहा हैं कि – **''ते पुण मूढतणओ कत्थवि नालोइय कहवि''** मूढ़ता के कारण उन्होंने आलोचना नहीं ली। काल करके अनुक्रम से सर्ग का जीव ताम्रलिप्त नगर में अरूणदेव नाम का श्रेष्ठीपुत्र बना और चन्द्रा का जीव पाटलीपुत्र में जसादित्य के यहां पुत्री के रूप में जन्म पाया। उसका नाम देवणी रखा गया। यौवन वय में योगानुयोग अरूणदेव और देवणी की परस्पर शादी हो गयी। कैसी विचित्र स्थिति है कर्म की? एक बार माता और पुत्र का संबंध था, अब वह मिटकर पति–पत्नी का संबंध हो गया।

एक दिन अरुणदेव मित्र के साथ समुद्रपथ से जहाज में रवाना हुआ। परन्तु अशुभ कर्म के योग से जहाज टूट गया। सद्भाग्य से दोनों को एक लकड़ी का तख्ता मिल गया। उसके सहारे तैरते–तैरते वे दोनों किनारे पर आ गये। वहां से आगे चल कर पाटलीपुत्र नगर के पास पहुंचे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध के आवेश में पुत्र ने सगी माँ को, "क्या तू शूली पर चढ़ने गई थी?" और माँ चंद्राने पुत्र को, "क्या तेरी कलाईयाँ कट गई थी?" ऐसा कहा।

मित्र ने कहा- अरुणदेव! तेरा ससुराल इस गाँव में है। हम हैरान-परेशान हो चुके हैं। चलो हम तुम्हारे श्वसुर के घर चलें। अरुणदेव ने कहा-इस दरिद्रावस्था में मैं वहां कैसे जाऊं? मित्र ने कहा-कि तू यहाँ बैठ। मैं वहाँ जाकर आ जाता हूं। मित्र गाँव में गया। अरुणदेव एक देवमन्दिर में निद्राधीन हो गया। समुद्र में तैरने के कारण थकावट से शीघ्र ही खर्राटे भरने लगा। इतने में देवणी अलंकृत होकर उपवन में आयी। वहां किसी चोर ने तलवार से उसकी कलाई काट कर कंकण ले लिए और वह भाग गया। देवणी ने शोरगुल मचाया। सिपाही चोर के पीछे लग गये। छिपने या भागने की जगह न होने के कारण चोर देव-मंदिर में घुस गया और अरुणदेव के पास रक्तरंजित तलवार और कंकण रखकर भाग गया। पीछा करने वाले सिपाही अरुणदेव के पास आए और चोरी का माल उसके पास देखकर, उसे पकड़ा और मारा। बाद में सिपाही उसे राजा के पास ले गए। इस प्रकार दिन दहाड़े कलाई काटने वाला जानकर राजा ने अरुणदेव को शूली पर चढ़ाने का आदेश दे दिया। जल्लादों ने उसे शूली पर चढ़ा दिया।

इधर मित्र भोजन आदि लेकर आया। पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि अरुणदेव को तो शूली पर चढ़ा दिया गया है। जसादित्य को इस बात का पता चलने पर वह भी वहाँ पर आया और अपने दामाद को इस प्रकार शूली पर चढ़ाया गया है। यह सर्व वृत्तांत जानकर उसे लगा कि यह बहुत बड़ा अनिष्ट हुआ है। यह विचारकर वह राजा के पास गया और कहा कि "हे राजन्! ये तो मेरे जमाईराज हैं। वे तख्ते के सहारे से समुद्र से बचकर आये हुए हैं। अतः मेरी पुत्री की कलाई किसी ओर ठग ने काटी होगी।" जसादित्य द्वारा इस प्रकार सुनकर राजा ने शूली पर से अरुणदेव को उतरवा दिया। अनेक उपचारों से उसे स्वस्थ किया। अन्त में अरुणदेव और देवणी दोनों अनशन करके देवलोक में गये। इस प्रकार क्रोधी वचनों की आलोचना न लेने के कारण अनन्तर भव में चंद्रा के जीव को कलाई कटवानी पड़ी और अरुणदेव को शूली पर चढ़ना पड़ा। अतः क्रोधादि कषायों की भी आलोचना लेनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

12 लक्ष्मणा साध्वीजी ने स्पष्ट आलोचना नहीं ली।

आज से ८०वीं चौविशी के पहले अन्तिम तीर्थंकर के शासन में लक्ष्मणा नाम की एक राजकुमारी थी। विवाह के समय शादी के मंडप में ही वह विधवा हो गई। श्रावक धर्म का पालन करती हुई शुभ दिन को उसने दीक्षा अंगीकार की। बाद में अनेक को प्रतिबोध देकर अनेक शिष्याओं की गुरुणी बनी। एक दिन चिड़ा-चिड़ी की संभोग क्रिया को देखकर लक्ष्मणा साध्वी विचार करने लगी कि अरिहंत भगवान ने संभोग की अनुमति क्यों नहीं दी ? अथवा भगवान अवेदी थे, अतः वेद वाले जीवों की वेदना उन्हें क्या मालूम ? ऐसा विचार क्षणमात्र के लिये उसे आया। फिर उसे पश्चात्ताप हुआ कि मैंने यह गलत विचार किया है, क्योंकि अरिहंत भगवान तो सर्वज्ञ होते हैं। अतः सर्वजीवों की वेदना जान सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस भयंकर विचार की मुझे आलोचना लेनी चाहिये। ऐसा विचार करके उसने आलोचना लेने के लिये प्रयाण किया, परन्तु प्रयाण करते ही पैर में कांटा चुभ गया। उस वक्त साध्वीजी के मन में यह विचार अंकुरित हुआ कि ''यह अपशकुन हुआ है। अतः आलोचना लेने पर मैं अधम गिनी जाऊंगी। गुरुदेव मुझे कैसी सत्त्वहीन गिनेंगें? और शल्ययुक्त रहना भी उचित नहीं है-इत्यादि'' विचार करके उसने दूसरे के नाम से आलोचना लेने का निर्णय किया। उसने गुरुदेव के पास जाकर पूछा - ''हे गुरुदेव ! किसी को इस प्रकार का विचार आया हो, तो क्या प्रायश्चित आता है ?'' मैंने ऐसा विचार किया है, यह बात छिपा दी। उसके पश्चात् १० वर्ष तक छट्ठ-अट्ठम-चार उपवास, पांच उपवास और पारणे में निवी की। २ वर्ष तक भुने हुए धान्य का आहार किया। १६ वर्ष तक मासक्षमण किये। २० वर्ष तक आयंबिल किये। २ वर्ष तक भुने हुए निर्लेप चीणे खाये। इस प्रकार ५० वर्ष तक घोर तप किया, फिर भी पाप की शुद्धि नहीं हुई। जिससे आर्त्तध्यान में मरकर, उसने असंख्य भव किये। अनागत चौविशी के प्रथम तीर्थंकर के शासन में वह मोक्ष में जायेगी। इस प्रकार माया कपट कर शुद्ध आलोचना नहीं ली। तो उसका भव-भ्रमण बढ़ गया। अगर उसने मानसिक आलोचना शुद्ध ले ली होती, तो न उसे इतना तप करना पड़ता और न दुर्गति भी होती। पाप को छिपाने से उसका तप भी सफल नहीं हुआ। अतः मानसिक आलोचना लेकर शुद्ध बनना चाहिए।

आज कुछ जीव वाचिक और कायिक आलोचना ले लेते हैं। जैसे कि अपशब्द बोलें, जीव मरे इत्यादि, परन्तु मन से कषाय-वासनादि के जैसे-तैसे विचार किये, ऐसी मानसिक आलोचना बहुत कम जीव लेते हैं। मानसिक आलोचना के सिवाय सम्पूर्ण शुद्धि नहीं होती है। अतः मानसिक, वाचिक और कायिक तीनों प्रकार से आलोचना लेनी चाहिए। कदाचित् मानसिक आलोचना भूल से रह गई हो, या जानकर रख ली हो, तो वापस आलोचना लेनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

13 एक थी राजकुमारी... ऋषिदत्ता

राजकुमारी धर्मात्मा बनी... गंगापुर नाम का नगर था। उसमें गंगादत्त नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी गंगा रानी से गंगसेना नाम की पुत्री हुई। राजकुमारी गंगसेना साध्वीजी महाराज से प्रतिबोध प्राप्त कर धार्मिक बन गई। जैन धर्म का सार समझकर उसने यौवनावस्था में ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लिया। वह आयंबिल आदि तपश्चर्या में जीवन बिताने लगी।

कलंक देने का प्रायश्चित नहीं लिया... संगा नाम की एक गरीब श्राविका थी। उसने साध्वीजी से प्रतिबोध पाकर दीक्षा ली। दीक्षित बनने के बाद वह बहुत तपश्चर्या करने लगी। ज्ञान-ध्यान-तप में लीन बनी हुई साध्वीजी ने साधना के द्वारा ऐसी सिद्धि प्राप्त की, जिससे उसकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गयी। जिससे लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। यह देखकर राजकुमारी गंगेसना को ईर्ष्या के कारण यह प्रसिद्धि सहन न हुई। उसको लगा कि यह मेरी प्रतिस्पर्धिनी है और लोगों की प्रशंसा-पात्र बनी है। लोग पहले मेरी प्रशंसा करते थे और अब उसकी कर रहे हैं! नहीं... यह नहीं चलेगा। अतः मैं इसको लोगों की दृष्टि में किसी तरह भी नीचे गिरा दूं। इस प्रकार ईर्ष्या में आकर उसने साध्वीजी संगाश्रीजी पर कलंक लगाया कि यह तो राक्षसी है। दिन में तपश्चर्या करती है और रात्रि में मुर्दे खाती है। इस प्रकार बारंबार लोगों को कहने लगी। कहा जाता है कि, एक झूठी बात जब सौ बार कहने में आये, तब लोग उसे सच मान लेते हैं।

राजकुमारी होने के कारण समाज पर उसका प्रभाव था और धर्मात्मा का चोला पहने हुई थी। इसलिए लोगों का विश्वास पाना सहज था। अतः लोग उसकी बात को सत्य मानने लगे। ''संगा साध्वी राक्षसी है..!!''

हाथी के दांत खाने के दूसरे और दिखाने के दूसरे.... बाहर से तपस्वी और अंदर से ऐसी हीनवृत्ति... छि: ! धिक्कार है.... मुँह में राम, बगल में छुरी। समता की सरिता समान साध्वीजी संगा..... चुपचाप उसने यह कलंक सहन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर लिया और विचार किया कि यह मेरे खुद के कर्म का दोष है। इस प्रकार विचार कर उसने राजकुमारी पर द्वेष नहीं किया। राजकुमारी ने इस प्रकार ईर्ष्या से कलंक देने के पश्चात् प्रायश्चित नहीं लिया और मृत्यु पाकर उसने अनेक भवों में भ्रमण किया। उसके बाद इसी गंगापुर नगर में वह पुनः राजकुमारी बनी। वैराग्य पाकर उसने दीक्षा ली। आयुष्य पूर्ण होने पर दूसरे देवलोक में देवी बनी। वहां पर अपना आयुष्य पूर्ण करके वह मृतिकापदा नगरी के राजा हरिषेण राजा की पत्नी प्रियमती की कुक्षि में अवतरित हुई। राजा रानी ने तापसधर्म स्वीकार किया...

एक बार संसार से विरक्त होकर हरिषेण राजा ने अपनी पत्नी से कहा कि मैं राज्य का कारोबार छोड़कर तपोवन में जाऊंगा और वहां पर आत्म-साधना करूंगा। तुम यहीं पर रहना। पतिव्रता रानी प्रियमती ने कहा कि जो आपका मार्ग, वही मेरा मार्ग। मैं भी आपके साथ तपोवन में चलकर साधना करूँगी।

राजा को यह मालूम नहीं था कि यह गर्भवती है। अतः राजा ने अनुमति दे दी। दोनों विश्वभूति तापस के पास गये और तापस धर्म का स्वीकार किया। दोनों तापस-तापसी बन गये। जंगल में फलाहार इत्यादि करके निर्वाह करने लगे। परन्तु कुछ दिन व्यतीत होने के बाद प्रियमती के शरीर पर गर्भ के लक्षण दिखाई देने लगे। यह स्थिति देखकर कुलपति ने विचार किया कि यह क्या हुआ? अपनी बेइज्जती होगी। यह जानकर कुलपति राजा हरिषेण और प्रियमती को छोड़कर अन्यत्र चले गये।

ऋषिदत्ता अदृश्य बनने लगी... क्रम से समय व्यतीत होने के बाद प्रियमती तापसी ने पुत्री को जन्म दिया। जन्म देते ही वह मरण के शरण हो गई। पिता हरिषेण ने ऋषि की कृपा से यह पुत्री हुई है। यह सोच कर इसका नाम ऋषिदत्ता रखा। वह क्रमशः बड़ी होने लगी। उसने यौवन के प्रांगण में कदम रखा। उसका रुप और लावण्य देखकर पिता हरिषेण को चिंता होने लगी। इसलिये जंगल में उसके शील की रक्षा के लिए पिता ने उसे अदृश्य विद्या प्रदान की, जिससे वह कभी-कभी अदृश्य हो जाती थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शादी के लिये कनकरथ का प्रयाण... एक बार रथमर्दन नगर के राजा हेमरथ के रूप, लावण्य, कला और गुणसंपन्न पुत्र कनकरथ को काबेरीपुरी के राजा सुंदरपाणी ने अपनी पुत्री रूक्मिणी के साथ शादी करने के लिए निमंत्रण दिया। निमंत्रण का स्वीकार कर हेमरथ राजा ने अपने पुत्र कनकरथ को सैन्य सहित काबेरीपुरी की ओर प्रयाण करवाया।

प्रयाण करके राजकुमार उसी जंगल में पहुँचा, जहाँ ऋषिदत्ता रहती थी। उसको बहुत प्यास लगी। पानी की खोज करने के लिए सिपाही इधर-उधर घूमने लगे। बहुत देर के बाद पानी लेकर सिपाही आए। तब राजकुमार ने अपनी प्यास बुझाई और उनसे पूछा, कि ''इतनी देर क्यों हुई?''

हाथ जोड़कर सिपाहियों ने जबाब दिया कि हे स्वामिन् ! आपको आश्चर्य होगा, परंतु यह बात सच है कि पानी की शोध में हम जंगल में भटक रहे थे। तब यहाँ से ४ कोश (१३ किलोमीटर) जाने पर हमने एक सरोवर देखा। उसके किनारे एक देवमंदिर था। जिसके पास वट का पेड़ था। वहाँ पर एक तापस दिखाई दिया। जिसके पास कभी-कभी रूप-यौवन से सुशोभित लड़की दिखाई देती व पुनः क्षणभर में वह अदृश्य हो जाती। अरे ! वह लड़की बारबार दृश्य-अदृश्य हो रही थी। यह हमारी आँखो का भ्रम तो नहीं? मृगजल के समान हमारी कल्पना तो नहीं? इस आश्चर्य को देखने के लिए हम वहां खड़े रहे। अतः वापस आने में विलम्ब हुआ है।

ऋषिदत्ता की शादी... दूसरे दिन कुमार को उत्कंठा हुई कि किसी भी तरह मुझे इसका रहस्य प्राप्त करना है। इसलिये कुमार ने उस क्षेत्र की ओर प्रयाण किया। वहाँ पर राजकुमार ने भी देखा, कि क्षणभर में एक लड़की दिखाई देती और पुनः अदृश्य हो जाती। राजकुमार देवमंदिर में गया। वहाँ पर उसने एक वृद्ध तापस को देखा। राजकुमार ने उसका अभिवादन किया। तापस ने राजकुमार से उसका परिचय पूछा। तापस को अपना परिचय देकर उसने वहाँ रहने की अनुमति मांगी। तापस ने सहर्ष अनुमति प्रदान की।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक दिन राजकुमार ने तापस से क्षणभर में अदृश्य होने वाली लड़की के बारे में पूछा। तब तापस ने यह सोचा कि यह मेरी पुत्री को चाहता है, इसलिए तापस ने उसका सारा पूर्व वृतांत विस्तार से बताया, जिसे सुनकर राजकुमार के रोम-रोम में खुशी की लहर छा गई। तापस ने भी योग्य जानकर अपनी पुत्री ऋषिदत्ता की शादी कनकरथ राजकुमार के साथ कर दी। शादी के बाद कनकरथ का मन शांत हो गया। इसलिये उसने दूसरी शादी करने का विचार छोड़ दिया। वहाँ से वापस लौटकर वह अपने नगर की ओर चला और धूमधाम से नगर प्रवेश किया। जब रूक्मिणी को पता चला कि कनकरथ बीच में से ही अन्य के साथ शादी करके वापिस चला गया है, तब वह चिंता से आकुल व्याकुल हो गई और नागिन की तरह बदला लेने के लिये तैयार हो गयी, किसी भी तरह मैं कनकरथ को ऋषिदत्ता से विमुख कर दूंगी, जिससे कनकरथ राजकुमार मेरे साथ शादी करने के लिये तैयार हो जायेंगे, कैसा है वासना का तूफान? जिससे दूसरे इंसान को नुकसान पहुंचाकर भी खुद के मनसूबे को पूरा करना। यह कैसी मैली मुराद है?

मानव का अहंभाव... एक दिन सुलसा नाम की एक तापस रूक्मिणी के पास आई। उसने उससे चिंता का कारण पूछा। तब रूक्मिणी ने अपने दिल की सारी गूढ़ बात कह सुनाई, जिसे सुनकर सुलसा अहंभाव में आई और उसने कहा कि चिंता मत कर। मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि मैं तेरा कार्य अवश्य कर दूंगी।

सुलसा रथमर्दन पहुँच गई। ऋषिदत्ता को देखते ही वह हतोत्साह हो गई। अरर ! ऐसी गुणवती पत्नी पाकर दूसरी की चाह कौन करेगा? अमृत पाकर विष पाने की चाहना कोई करता है क्या ? राजकुमार ने सही निर्णय लिया है, परन्तु मैंने तो रूक्मिणी के पास प्रतिज्ञा की है कि मैं तेरा यह काम अवश्य करूँगी। यह प्रतिज्ञा निष्फल कैसे हो सकती है? मैं किसी तरह से इस ऋषिदत्ता को बर्बाद करूँगी। मानव का अहंत्व कैसा भयंकर है? जिसके फलस्वरूप वह दूसरे का विनाश सोचता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माँसभक्षण का आरोप... वह तापसी मैली विद्या के बल से राजमान्य पुरुष को मारकर (निर्दोष) ऋषिदत्ता के हाथ और मुँह को माँस और खून से रंग देती। धीरे-धीरे यह बात प्रकट होने लगी। लोगों में चर्चा होने लगी, कि ''ऋषिदत्ता राक्षसी है। वह रात्री में लोगों की हत्या कर माँस खाती है।''

राजकुमार ने ऋषिदत्ता से पूछा, कि ''तू यह क्या करती है?'' उसने नम्रता पूर्वक प्रत्युत्तर दिया कि मैं कुछ भी नहीं जानती हूँ। पूर्वभव के कर्मोदय के कारण मुझ पर किसी ने यह कलंक लगाया गया है। परंतु मैं कुछ नहीं जानती। यह सुनकर कुमार की शंका दूर हो गयी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुलसा ने अपना प्रयत्न चालू रखा। दूसरे दिन मांस का टुकड़ा उसने बिछोने में रख दिया। तीसरे दिन खून से रंगी हुई छूरी भी बिस्तर में रख दी। विद्या के प्रभाव से सुलसा का गमनागमन कुमार को मालूम नहीं हुआ। अत: तो कुमार की श्रद्धा डगमगाने लगी। इसलिये उसने ऋषिदत्ता से पुनः पूछा कि यदि तुझे मानव को मांसभक्षण की इच्छा हो, तो मैं तुझे गुप्त रीति से खिला दूंगा। तू असलियत बता दे।

खुद के कर्मों का ही दोष जानकर ऋषिदत्ता रो पडी, स्वामिनाथ ! जन्म से अहिंसा को ही मैंने प्राण माना है। स्वप्न में भी मैं यह इच्छा नहीं कर सकती। पुनः ऋषिदत्ता ने विनय पूर्वक प्रत्युत्तर दिया, कि ''क्या आज दिन तक मैंने कोई बात आपसे छिपाई है ? फिर भी आपको विश्वास नहीं होता हो, तो इसमें मैं किसी को दोष नहीं देती। मेरे ही कर्मों का दोष है।'' यह कहते कहते उसकी आँखों में से गंगा-जमुना बहने लगी।

कनकरथ किंकर्तव्यविमूढ हो गया।.. न कहा जाये, न सहा जाये। उसकी ऐसी करुणदशा हो गयी कि ऐसे कातिल दृश्य देखने की उसमें हिम्मत नहीं थी और सुशील पत्नी के वियोग को भी सहन करने में वह असमर्थ था। अतः किसी के द्वारा पूछने पर वह टाल-मटोल करता हुआ कहता कि मैं तो इस विषय में कुछ भी नहीं जानता।

हेमरथ राजा का कोप और फैसला... एक दिन हेमरथ राजा ने आक्रोश में आकर मन्त्रियों से कहा कि इस प्रकार रोजाना मानवहत्या हो रही है और आप लोग कुछ भी नहीं कर रहे हो। क्या आप लोगों की बुद्धि का दिवाला निकल चुका है ?

राजा का प्रजा के प्रति प्रेम होने से, अहिंसा के अविहड राग से और रोष से भरे हुए वचन सुनकर मंत्री थर-थर कांपते हुए उपाय सोचने लगे। मंत्रियों ने काफी मेहनत की, लेकिन सब जगह निष्फलता मिली। अन्त में थक कर वे सुलसा तापसी के पास गये और उससे मानव-हत्या का कारण पूछा। कपट विद्या में पारंगत उसने बहाना बनाते हुए जवाब दिया कि प्रश्न जटिल है। रात्रि में देवता को पूछकर मैं जवाब दूंगी। इस प्रकार बहाना बनाने का यह प्रयोजन था कि देवता के नाम से लोगों को पूर्णतया विश्वास हो जाएगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुलसा तापसी रात्रि में ऋषिदत्ता का मुँह खून से रंगकर उस पर अवस्वापिनी निद्रा डालकर राजा व मंत्रियों के दिमाग में इस बात को बिठाने के लिये उनके पास गई। विशेष विश्वास जमाने के लिए कपटपटु उसने राजा से कहा कि आप यदि अभयदान दें, तो मैं सारी हकीकत बताऊं। राजा के स्वीकार करने पर उसने राजा से कहा कि आप स्वयं ऋषिदत्ता के पास जाकर देखिये। राजा वहाँ गया और उसने वही स्थिति देखी। देखते ही राजा के दिमाग का पारा चढ़ गया।

अरर ! यह तो ऋषिदत्ता का ही सारा षड्यंत्र है। छुरी से मार कर यही रोज खून पीती है, आज तो मैंने अपनी इन आँखो से देखा है। बस, अब मुझे राजकुमार से कुछ भी नहीं पूछना है। अतः उसने तुरन्त उसे मारने के लिए चंडालों को सौंप दिया और कहा कि इस पाप के भार से पृथ्वी को हल्का बना दो। वे उसे श्मसान में ले गये। वहाँ उन्होंने निराधार ऋषिदत्ता को बहुत धमकाया। अबला के आँखो में से बैर बैर जितने आँसू टपकने लगे।

महासती पर चंडालों को दया आई... सती के सद्भाग्य से एक चंडाल ने कहा कि ऐसी निर्दोष और दयालु सती ऐसा कार्य कर ही नहीं सकती, परन्तु अब क्या करें?

चंडालों को भी रहम आ गई और उन्होंने कहा कि तुम दूर देश में चली जाओ। जिससे राजा हमें दोषी न ठहरा सके कि तुम्हारे साथ हमारी मिलीभगत थी, इसलिये हमने तुम्हें जीवित छोड़ दिया।

कर्म के फल का विचार करती हुई वह अपने पिता के आश्रम की ओर चल पड़ी। चंडालों ने किसी अन्य का मस्तक काटकर राजा को बता दिया। अन्य ग्रन्थों में यह उल्लेख मिलता है कि चंडालों ने उसे इतना मारा कि वह बेहोश हो गई। अतः चंडाल उसे मृतवत् मान कर चले गये। जब उसे चेतना आई, तब वह कर्म का विचार करती हुई अपने पिता के आश्रम की ओर चल पड़ी। जब वहाँ पहुँची, तो पिता की मृत्यु हो चुकी थी। उसके पास चमत्कारी जड़ीबूट्टी थी। अतः शील की सुरक्षा के लिए जटिका (जड़ीबूट्टी) के प्रभाव से उसने पुरुष वेष धारण कर लिया और तापस कुमार बनकर रहने लगी।

कनकरथ की रूक्मिणी के साथ शादी... दूसरी ओर कनकरथ राजकुमार ऋषिदत्ता के वियोग से जल बिन मीन की तरह तड़पने लगा। उसके वियोग से वह संतप्त रहने लगा। इसी समय में काबेरी पो सुन्दरपाणी राजा का दूत रूक्मिणी के साथ शादी करने हेतु निमन्त्रण लेकर आया। हेमरथ राजा ने अपने पुत्र कनकरथ को समझाया कि ऋषिदत्ता तो यम शरण हो गई है। अतः निमंत्रण स्वीकार करना उचित है। पिता के अनुरोध से कनकरथ ने स्वीकृति प्रदान कर दी और उसने काबेरी की ओर प्रयाण किया। रास्ते में वही आश्रम आया, जहाँ ऋषिदत्ता तापस के रूप में रहती थी। वहाँ राजकुमार का दाहिना नेत्र फड़फड़ाने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होने लगा। उसने सोचा आज जरूर कोई लाभ होगा। इतने में उसने वहाँ तापस कुमार को देखा। देखते ही उस पर राजकुमार अत्यन्त मोहित हो गया।

उसने नमस्कार कर तापस कुमार से पूछा कि ''आप यहाँ कैसे ?'' तब तापस कुमार ने अपना स्वरूप छिपाते हुए कहा कि यहा पर हरिषेण नाम का तापस रहता था। उसकी एक लड़की थी। उसका नाम ऋषिदत्ता था। उसकी शादी किसी राजकुमार के साथ करके तापस मर गया। घूमता-घूमता मैं यहाँ आया और सुनसान प्रदेश देखकर मैं यहीं पर रहने लगा।

राजकुमार उसे देखकर एवं उसके विनयपूर्ण वचन सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ, मानो उसे ऋषिदत्ता ही मिल गई हो।

उसने तापस कुमार से आग्रहपूर्वक कहा कि आपको देखकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसलिये आप मेरे साथ रहिये। तापस कुमार ने कहा कि ''गृहस्थों के साथ तापस का क्या लेना-देना ?'' जब राजकुमार ने विशेष आग्रह किया, तब तापस कुमार ने साथ रहने के लिए हां भरी।

एक दिन घूमती-फिरती सुलसा तापसी भी उसी आश्रम में आ पहुँची। तापसकुमार ने अनुमान लगाया कि मुझे घर से निकालने वाली यही तापसी होनी चाहिए। तापस ने उससे कहा कि गुरु के उपदेश से किये हुए तप के द्वारा मुझे अभी तक विद्या प्राप्त नहीं हुई है। तब तापसी को लोभ जगा कि यह गुरु में निष्ठा रखने वाला तपस्वी है। इसलिए मैं इसके साथ अच्छा संबंध रखूंगी, तो जैसे इसको विद्या मिलेगी, तो इनसे मुझे भी विद्या मिल जायेगी। इसलिए तापसी ने तापस कुमार से कहा कि मेरे पास अवस्वापिनी वगैरह विद्या है और मैंने ऋषिदत्ता पर इसका प्रयोग करके सफलता प्राप्त की है। तापस कुमार ने उससे सारा वृतान्त जानकर एक वाक्य में प्रत्युत्तर दे दिया कि मुझे ऐसी पाप विद्या की जरुरत नहीं है। परंतु मन में तापसकुमार समझ गया कि मुझे आपत्ति में डालने वाली यह दुष्ट सुलसा ही है। लेकिन अवसर आने पर देखा जायेगा। इस प्रकार विचार कर वह स्वस्थ हो गया।

तापस कुमार व राजकुमार की मित्रता... एक बार बहुत देर होने पर भी तापस कुमार वापस नहीं लौटा, तब राजकुमार स्वयं उसके पास गया और आग्रह पूर्वक अपने शामियाने में उसे ले आया। रात भर दोनों साथ-साथ सोकर परस्पर बातचीत करने लगे। तापस कुमार ने राजकुमार को उद्विग्न जानकर पूछा कि ऐसी कैसी ऋषिदत्ता थी कि अभी तक आपका मन संतप्त रहता है व आपको चैन क्यों नहीं पड़ता? तब राजकुमार ने गद्गद् स्वर से उसके रूप, लावण्य और गुणों का कुछ वर्णन किया और कहा कि ''हे मित्र ! एक जीभ से कभी उसका वर्णन पूरा नहीं हो सकता।''

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्या कहूं उसकी विनय शीलता? क्या बताऊँ, उसका रूप व सौन्दर्य, इत्यादि बातें करते रात्रि पूर्ण हो गई। सुबह होते ही काबेरी से मंत्रीजी आये। उन्होंने प्रयाण के लिए निवेदन किया। तब राजकुमार ने कहा कि मेरा मित्र तापसकुमार यदि वहाँ साथ चलेगा, तो मैं आऊँगा, अन्यथा नहीं। तापस कुमार को बहुत मनाया गया। अंत में राजकुमार ने उससे कहा कि आप एक बार तो मेरे साथ चलो, शादी होने के बाद मैं आपको यहां पर पहुँचाने आऊँगा। इतना कहने-सुनने के बाद तापसकुमार चलने के लिए तैयार हुआ।

सभी ने वहाँ से प्रयाण किया। काबेरी पहुंचने के बाद राजकुमार कनकरथ के साथ राजकुमारी रूक्मिणी की धामधूम से शादी हो गई। बहुत दिनों तक कनकरथ ससुराल में ही रहा। राजकुमारी ऋषिदत्ता की याद में वह उद्विग्न रहता था और उदासीनता में अपना समय व्यतीत करता था।

आखिर भंड़ा फूटा... एक दिन राजकुमार उदासीन मुद्रा में बैठे हुए थे, तब रूक्मिणी ने राजकुमार से पूछा कि ''आप उदास क्यों रहते हो? ऐसी कैसी ऋषिदत्ता थी कि मेरे जैसी सुन्दर पत्नी मिलने पर भी आप उसको भूलते नहीं हैं?'' तब राजकुमार ने कहा कि ''तू तो रूप लावण्य में उसके सामने कुछ भी नहीं है। अरे ! हिमालय पर्वत के सामने तू राई समान है। कहाँ उसका रूप, कहाँ उसका लावण्य और कहाँ उसकी गुणों की माला...! उसके मरने के बाद मेरे पिताजी ने आग्रह किया। इसलिए मैं शादी करने आया हूँ, अन्यथा तेरे से शादी करने आता ही नहीं।''

यह सुनते ही रूक्मिणी की आत्मा में अहंभाव जाग उठा और वह जोर से बोल उठी। यह तो सारी मेरी करामात थी, जिससे आपके पिताजी ने आपको यहां पधारने के लिए कहा। अन्यथा आपके पिताजी भी नहीं कहते। यह कहकर उसने अपनी चतुराई बताने के लिए किस प्रकार सुलसा तापसी द्वारा यह काम करवाया? यह सारी घटना सुना दी। षड्यंत्र का भंडा फूट गया, ''पाप छुपाये न छुपे... छुपे तो मोटे भाग, दाबी दुबी ना रहे रुई लपेटी आग...''

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह सुनकर राजकुमार अत्यन्त खिन्न हो गया। अरे ! एक महासती के ऊपर ऐसा भयंकर कलंक इस पापिणी ने अपने स्वार्थ के लिये लगाया। राजकुमार के मन में रूक्मिणी के प्रति अत्यंत तिरस्कार भाव जागा और खुद को कोसने लगा कि मेरे आश्रित व्यक्ति को मैं बचा न सका और मेरी मजबूरी के पाप से एक महासती परलोक में पहुँच गयी। राजकुमार अग्निस्नान करने को तैयार हुआ... इधर तापसकुमार के रूप में रही हुई ऋषिदत्ता आनंद विभोर हो गई, क्योंकि आज वास्तव में उसका कलंक उतर गया।

इसलिये वह मन ही मन खुश हो रही थी। राजकुमार कनकरथ क्रोध से तमतमा उठा। एक निर्दोष सती के ऊपर कलंक लगाने वाली रूक्मिणी के प्रति उसे तिरस्कार भाव जगा। इतना ही नहीं, उसे स्वयं पर भी तिरस्कार भाव जगा। अरर ! मैं सर्वथा निकम्मा निकला। एक निर्दोष सती पत्नी की रक्षा भी नहीं कर पाया। अतः मुझे जीने का कोई अधिकार नहीं है, आश्रित की सुरक्षा करने में असफल मानव के लिए अग्नि ही शरण है और सती को पीड़ा पहुंचाने वाले का यही प्रायश्चित है। इस प्रकार विचार कर उसने चिता जलाई। राजकुमार उसमें कूदकर अग्नि स्नान करने की तैयारी करने लगा। तब दूसरे लोगों को भी असलियत मालूम हुई।

राजकुमार का निर्णय पवन की तरह सारे नगर में फैल गया, साथ ही ऋषिदत्ता की सुगंध और रूक्मिणी की दुर्गंध भी.... जनमुख में बस यही तीन बातें चल रही थी कि, धन्य है महासती ऋषिदत्ता को... धिक्कार हो रूक्मिणी को... और किसी भी संयोग में राजकुमार को बचा लिया जाये।

घर-घर यही बात थी। सुंदरपाणी राजा ने सुलसा तापसी का तिरस्कार कर उसे अपने राज्य से निकाल दिया। परंतु फौलादी पुरुष के विचार भी फौलादी थे। अनेक रीति से

समझाने पर जब राजकुमार ने जल मरने की जिद्द न छोड़ी, तब सुन्दरपाणी तापसकुमार के पास गया और राजकुमार को बचाने के लिए उससे प्रार्थना की।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तापसकुमार पर्दे में गया और पर्दे में से ऋषिदत्ता प्रगट हुई, तब उसका रूप देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वास्तव में तापसकुमार भी धर्मसंकट में फँसा हुआ था। बुद्धि से काम लेने में न आये, तो गड़बड़ हुए बिना नहीं रहेगी। राजा की प्रार्थना को स्वीकार कर वह राजकुमार के पास गया और उसको समझाने लगा। अरे ! मित्र ! यह क्या कर रहा है? आत्महत्या कितनी भयंकर है। तेरे माता-पिता भी दुनिया में मुँह कैसे दिखायेंगे ? अरे मित्र ! परलोक में तेरा क्या होगा ? अरे मित्र ! तू जिंदा रहेगा, तो शायद ऋषिदत्ता भी वापस मिल जाएगी, परन्तु जल मरने पर तो कभी नहीं मिल सकेगी। पेड़ पर रात्रि में बैठे हुए पक्षी प्रातः होते ही अलग-अलग दिशा में उड़ जाने के बाद वापस मिलते हैं क्या ? नहीं, तो यहाँ पर भी ऐसा समझिये।

उचित बातें होने पर भी मनुष्य अपने मतलब की बात पकड़ लेता है। यदि जिंदा रहेगा, तो संभव है कि ऋषिदत्ता मिल भी जाएगी। इतना सुनते ही राजकुमार बोल उठा ! अरे मित्र ! यदि तू ऋषिदत्ता को ले आये, तो मैं जिंदा रह सकता हूं। इसके लिए तू जो मांगेगा, वह तुझे वरदान दूंगा। अरे मित्र ! सच बोल, क्या तूने ऋषिदत्ता को कहीं देखी है? ''ज़रुर देखी है। विधाता के पास '' तापसकुमार ने गंभीरता से जवाब दिया। राजकुमार ने कहा कि, ''तू वहाँ जाकर उसे ले आ। तापसकुमार ने जवाब दिया कि, अगर मैं वहाँ जाऊँगा, तो मुझे वहाँ ही रहना पडेगा और ऋषिदत्ता यहाँ आ जायेगी। कोई बात नहीं, तू आये, तो ठीक, नहीं तो ऋषिदत्ता को जरुर भेजना। राजकुमार की यह बात सुनकर तापसकुमार ने कहा कि वरदान तो आप अब अपने ही पास रखिये और पर्दा करवा दीजिए। मैं ध्यान के बल से उसे आपके पास भेज दूंगा, परन्तु मैं वापस नहीं लौटूंगा। कनकरथ ने कहा खैर, कोई बात नहीं, आप उसे तो भेज दीजिये।

मनुष्य अपने स्वार्थ-साधना में कितना प्रवीण होता है? यह इससे सिद्ध हो जाता है कि जो मित्र के बिना एक पल भी नहीं रह सकता था, वही राजकुमार ऋषिदत्ता के लिये मित्र को छोड़ने के लिये तैयार हो गया।

ऋषिदत्ता का प्रकट होना... तापसकुमार पर्दे में गया और जटिका निकालकर ऋषिदत्ता के रूप में पर्दे से बाहर आया। सब के सामने ऋषिदत्ता प्रकट हुई। तब उपस्थित लोग दांतो तले उंगली दबाने लगे और कहने लगे कि रूक्मिणी को छोड़कर ऋषिदत्ता के स्नेह में राजकुमार आसक्त रहता था। यह उचित ही था कि अमृत को पाकर विष कौन पीएगा? अब राजकुमार को रूक्मिणी के प्रति और भी घृणा उत्पन्न हो गई। जिससे उसकी तरफ देखना भी बंद कर दिया। यह देखकर कद्रदान ऋषिदत्ता का मन व्यग्र हो उठा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऋषिदत्ता की हृदय की विशालता... एक दिन राजकुमार को प्रसन्न देख कर ऋषिदत्ता ने भूतपूर्व सारी हकीकत सुनाकर कहा कि मैं ही तापसकुमार बनी थी। जिससे कनकरथ को मित्र के वियोग की व्यथा भी मिट गई। लेकिन ऋषिदत्ता ने वरदान की बात याद दिलाकर कहा कि, ''अब वरदान दीजिये।'' तब कुमार ने कहा कि तू जो मांगे, वह देने के लिए मैं तैयार हूं।

परोपकारिणी ऋषिदत्ता ने कुमार से कहा कि जैसा बर्ताव आप मेरे प्रति रखते हो, वैसा ही बर्ताव आज से रूक्मिणी के प्रति रखिए। यही मुझे वरदान के रूप में चाहिये। स्त्री-हृदय की इतनी उदारता देखकर वह आश्चर्यमुग्ध हो गया। मनोमन उसकी विशालता के प्रति झुक पड़ा। यह कैसी नारी ? जिसने ऐसा भयंकर अपराध किया, उसके ऊपर भी प्रेम और दया की भावना। कुमार की आँखों से हर्ष के आँसू छलकने लगे। ''अहो ! अभाव तो दूर रहा, परन्तु समग्र अपराधों को माफ कर यह इनाम ! गज़ब-गज़ब कर दिया ऋषिदत्ता तूने !'' राजकुमार बोल उठा। राजकुमार ने उसकी बात का स्वीकार किया। उसके बाद राजकुमार रूक्मिणी पर भी समान रूप से स्नेह करने लगा। कुछ दिन पश्चात् उसने दोनों पत्नियों के साथ रथमर्दन नगर की ओर प्रयाण किया। वहाँ पर पहुँच कर हेमरथ राजा के चरणों में नमस्कार किया।

हेमरथ राजा का पश्चाताप व दीक्षा... सारा वृत्तांत सुनकर राजा को बहुत पश्चात्ताप हुआ। अरर ! एक निर्दोष सती को मैंने कितने भयंकर कष्टों का शिकार बना दिया। धिक्कार हो मेरे अहंभाव और अज्ञानता को ! उसने ऋषिदत्ता से क्षमा याचना की। राजा के मन पर इतनी चोट लगी, कि उसका हृदय पानी-पानी हो गया। समस्त संसार के प्रति उनको वैराग्य उत्पन्न हो गया। यह संसार ही भयंकर है, क्योंकि संसारी मानव निर्दोष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवों पर भी जुल्म करता है। इतने में वहाँ चार ज्ञान वाले आचार्यदेव श्री यशोधरसूरीश्वरजी म.सा. पधारे। वैराग्य वासित हृदय वाले हेमरथ राजा ने कनकरथ को राज्य देकर उनके पास दीक्षा ली।

कनकरथ व ऋषिदत्ता की दीक्षा... अब कनकरथ राजा बना। समय बीतने पर ऋषिदत्ता ने सिंह को स्वप्न में देखने के बाद सिंह के समान पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम सिंहरथ रखा।

एक दिन प्राकृतिक दृश्य को देखने में लीन राजा-रानी वातायन के द्वारा बाहर आकाश में गौर से देख रहे थे... संध्या काल में सूर्य के प्रभा मंडल से प्रकाशित बादलों का समूह विविध रंगों से सुसज्ज होकर अनेक रुप-रंग में नाच रहा था। रानी ! इधर तो देखिये... इन बादलों के विविध रंग कितने सुंदर लग रहे हैं।.... और थोड़ी ही देर में संध्या के बादल तितर-बितर होकर नष्ट हो गये। तब राजा की चिंतनधारा आगे चलने लगी, अरे... मेरा जीवन भी इसी तरह एक दिन नष्ट हो जायेगा ? विचारों के प्रचंड झंझावात से महाराजा का हृदय हिल उठा। मनुष्य जीवन का क्या भरोसा? यह भी वायु जैसा अस्थिर है। आराधना से वंचित होकर मैं कहाँ जन्म पाऊँगा ? ऐसे वैराग्य के फव्वारे राजा के हृदय-बाग में उछलने लगे। इतने में उद्यान में वे ही आचार्यदेव श्री यशोधरसूरीश्वरजी म.सा. हेमरथ मुनि के साथ वहाँ पधारे।

प्रवचन सुनने के बाद ऋषिदत्ता ने उनसे पूछा कि ''मैंने पूर्वभव में क्या पाप किया था, जिससे बेगुनाह मुझको इतना कष्ट इस जीवन में भोगना पड़ा।'' आचार्यदेवश्री ने उसके पूर्व भव बताते हुए कहा कि ''तूने पूर्वभव में ईर्ष्या के परवश होकर संगा साध्वीजी के ऊपर कलंक दिया था और उसकी आलोचना न ली । इससे तुझे इतना कष्ट भुगतना पड़ा है। यदि तू आलोचना प्रायश्चित्त ले लेती, तो तुझे यह कष्ट भुगतने की नौबत नहीं आती।''

यह सुनकर उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। कनकरथ ने राज्य का भार पुत्र को सौंपा व राजा-रानी दोनों ने दीक्षा को स्वीकार किया। विशुद्ध संयम की साधना करके केवलज्ञान पाकर दोनों मोक्ष में गये।

सोचिये इन विचित्र कर्मों की गति ! एक छोटी-सी चिनगारी भी दावानल का रुप ले सकती है। इसी प्रकार आलोचना न लेने पर एक छोटे-से कटु कलंकवचन से कितना कष्ट भुगतना पड़ा। ऋषिदत्ता यदि राजकुमारी गंगसेना के भव में संगा साध्वीजी को राक्षसी कहने के पाप की आलोचना ले लेती, तो उसे इतने कष्टों का शिकार नहीं बनना पड़ता और शीघ्र आत्म-कल्याण हो जाता। अतः हमें आलोचना लेकर अपनी आत्मा को शुद्ध बनानी चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

14 निर्दोष सीताजी पर कलंक क्यों आया ?

महान् पवित्र आत्मा सती सीताजी पर जन-सामान्य ने असदारोप (झूठा) लगाया। जिससे सीताजी को अनेक कष्ट भुगतने पड़े। क्योंकि जैनदर्शन **CAUSE AND EFFECT** थियरी को मानता है। कारण के बिना कार्य उत्पन्न होता ही नही। इसका संबंध पूर्व भव से है। क्योंकि उनकी आत्मा पूर्व भव में आलोचना (प्रायश्चित्त) न ले सकी। इसलिये महासती के ऊपर भी काला कलंक लगा।

श्रीभूति पुरोहित की पत्नी सरस्वती ने पुत्री को जन्म दिया। उसका नाम वेगवती रखा गया। क्रमशः वह यौवनावस्था को प्राप्त हुई, फिर भी उसकी धर्मकार्यों में अच्छी लगनी थी। एक दिन उसने कायोत्सर्ग में खड़े सुदर्शन मुनिश्री को देखा, मुनि भगवंत त्यागी और तपस्वी थे। जिन्हें अनेक लोग वंदन करते थे। वेगवती ने हँसी में आरोप लगाते हुए लोगों से कहा कि इनको आप क्यों वंदन करते हो? इनमें क्या पड़ा है? मैंने तो स्त्री के साथ क्रीड़ा करते हुए इन्हें देखा है और इन्होंने उस स्त्री को दूसरी जगह भेज दिया है। यह सुनकर शीघ्र ही लोकमानस बदल गया।

ऐसी बात !! विश्वस्त सूत्र जैसी अपने गाँव की लड़की वेगवती के मुंह से.... सबको विश्वास हो गया। महान पवित्र आत्मा होते हुए भी कुमारिका वेगवती ने सिर्फ उपहास में आरोप लगाया था, परंतु लोग कलंक की घोषणा सुनते ही मुनिश्री के प्रति दुर्भाव वाले बन गये।

यह देखकर सुदर्शन मुनिश्री ने वेगवती के ऊपर द्वेष नहीं किया, परंतु अपने कर्मों का विचार कर अभिग्रह किया कि जब तक यह कलंक नहीं उतरेगा, तब तक मैं कायोत्सर्ग नहीं पारुंगा। कायोत्सर्ग के प्रभाव से देव ने वेगवती के मुख को श्याम व विकृत बना दिया, कोयले जैसा काला और टेढ़ा-मेढ़ा.... उसके पिताश्री यह देखकर आश्चर्यचकित हो गये... मेरी सुंदर लड़की को यह कौन-सा रोग हो गया.... ''पुत्री ! यह क्या किया ? कोई दवाई तो नहीं लगाई। कुछ उल्टा-सुल्टा तो नहीं किया ?'' श्रीभूतिने आश्चर्य से पुछा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान मुखवाली वेगवती ने सभी लोगों की उपस्थिति में सुदर्शन मुनि से माफी मांगी।

वेगवती ने नम्रता से जवाब दिया, पिताश्री ! और तो मैने कुछ नहीं किया, परंतु कौतुक वृत्ति से मज़ाक में लोगों को कहा कि ''सुदर्शन मुनि को मैंने स्त्री के साथ देखा है।'' यह सुनते ही श्रीभूति क्रोधायमान हुए कि, ''अरर्र... यह तूने क्या किया ? जा, अभी जा और उस महान मुनि से माफी माँगकर आ...।'' पिताजी के रोष से वेगवती भयभीत हो गई और प्रकट रूप से वह थर-थर काँपने लगी। उसने सभी लोगों के सामने मुनि से क्षमा-याचना की और कहा कि मैंने उपहास में असत् दोषारोपण करके आपके ऊपर कलंक लगाया है। आप निर्दोष हैं। यह सुनकर लोग वापस मुनिश्री का सत्कार करने लगे। प्रकट रूप से माफी माँगने के पश्चात् उसने आलोचना न ली।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाद में उसने दीक्षा ली। चारित्र जीवन की सुंदर आराधना कर मृत्यु पाकर पांचवे देवलोक में गई। वहाँ से मरकर जनक राजा और विदेहा की पुत्री सीता बनी। रामचन्द्रजी की पत्नी बनने के बाद वनवास के दरमियान जंगल में रावण ने उसका अपहरण किया। भयंकर युद्ध हुआ। रावण की करूण मौत हुई। राम की विजय हुई। फिर राम, लक्ष्मण और सीता को अयोध्या में लोगों ने बड़ी खुशी से प्रवेश करवाया।

महान् सती सीताजी पर लोग झूठा दोषारोपण करने लगे कि सीताजी इतने दिन रावण के घर अकेली रही, अतः वह कैसे सती रह सकती है ? रामचन्द्रजी ने कोई परीक्षा किये बिना ही सीताजी को कैसे वापस घर में रख लिया? इन्होंने सूर्यवंश पर काला धब्बा लगाया है। इस प्रकार एक निर्दोष पवित्र आत्मा सीताजी पर झूठा कलंक आया, क्योंकि वेगवती के भव में उन्होंने आलोचना नहीं ली थी।

रामचन्द्रजी स्वयं जानते थे कि सीताजी महान् सती है, उसमें तनिक भी दोष नहीं है। फिर भी उन्होंने लोकापवाद के कारण कृतान्तवदन सारथी को बुलाया और तीर्थयात्रा के निमित्त से गर्भवती सीताजी को जंगल में छोड़ने के लिए कहा।

कृतान्तवदन जब सिंहनिनाद नामक भयानक जंगल में पहुँचा और वहाँ वह रथ से नीचे उतरा। तब उसका मुख म्लान हो गया। आँखों से श्रावणभाद्रपद बरसने लगा, तब सीताजी ने उससे पूछा कि ''आप शोकाकुल क्यों है ?'' तब उसने कहा कि ''इस पापी पेट के कारण मुझे यह दुर्वचन कहना पड़ रहा है कि आप रथ से उतर जाईये, क्योंकि यह रामचंद्रजी की आज्ञा है कि आपको इस जंगल में निराधार छोडकर मुझे वापस लौटना है।'' रावण के यहाँ रहने के कारण लोगों में आपकी निंदा होने लगी है। इसलिए सती होते हुए भी आपको रामचंद्रजी ने लोक-निंदा से बचने हेतु जंगल में छोड़ने के लिए मुझे भेजा है।

सीताजी यह सुनते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ी; आँखें बंद हो गई, शरीर भी निश्चेष्ट-सा हो गया, सारथि जोर से रोने लगा। अरे ! मेरे वचन से एक सती की हत्या ? कृतान्तवदन असहाय होकर खड़ा रहा। इतने में जंगल की शीतहवा ने संजीवनी का काम किया। उससे निश्चेष्ट सीताजी होश में आ गई। पश्चात् सीताजी ने सारथि के साथ रामचंद्रजी को संदेश भेजा कि जिस तरह लोगों के कहने से आपने मेरा त्याग किया है, उससे आपका कुछ भी नुकसान नहीं होगा क्योंकि मैं मंदभाग्यवाली हूँ। परंतु उसी प्रकार लोगों के कहने से धर्म का त्याग मत करना। नहीं तो भवोभव बिगड़ जायेंगे।

यह सुनकर सारथि की आँखो में आँसू आ गये। उसका हृदय गद्‌गद् हो गया... महासती के सत्य पर धन्य-धन्य पुकार उठा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीताजी रथ में से मुर्च्छित होकर गिर पड़ी।

सीताजी को छोड़कर सारथि चला गया। उस भीषण जंगल में वज्रजंघ राजा अपने मंत्री सुबुद्धि आदि के साथ हाथियों की शोध के लिये आये हुए थे। दूर से अकेली, अबला स्त्री को देखकर सहायता के लिये राजा अपने सिपाहियों के साथ वहाँ आ पहुँचे। सीताजी उन्हें लूटेरा समझकर गहने उनकी तरफ फेंकने लगी। तब वज्रजंघ राजा ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि, ''आप चिंता मत कीजिये। हम आपकी सहायता के लिये आये हैं। आपके भाई के समान हैं।'' तब सीताजी ने सब हकीकत कही, उसके बाद वज्रजंघ राजा वहाँ से सीताजी को सम्मान पूर्वक सुरक्षा के लिए पुंडरीक नगरी में ले गया। वहाँ पर उसने लव-कुश दो पुत्रों को जन्म दिया। जब वे बड़े हुए, तब उन्होंने राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध किया। युद्ध में राम-लक्ष्मण आकुल-व्याकुल हो गये। इतने में नारदजी वहाँ आये । उन्होंने पिता-पुत्र का परिचय करवाया और युद्ध को रोक दिया गया। उनका सुखदायी मिलन हुआ। लव और कुश को मान-सन्मान के साथ अयोध्या में प्रवेश करवाया। बाद में रामचंद्रजी की आज्ञा को मान देकर सीताजी ने अग्नि-दिव्य किया।

रामचन्द्रजी ने सम्मानपूर्वक अयोध्या में प्रवेश करने के लिए सीताजी से कहा। सीताजी ने उसी पल आत्म-कल्याण करने हेतु स्वयं लोच कर संयम स्वीकार किया; इत्यादि बातें हम जानते हैं।

पूर्वभव में उपहास में मुनि पर कलंक का आरोपण दिया था, उसका प्रायश्चित न लेने से एक महासती के ऊपर कलंक आया और उसके कारण कितने कष्ट सहने पड़े। अतः हमें जरूर आलोचना लेनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

15 हरिश्चन्द्र को श्मशान में क्यों रहना पड़ा ?

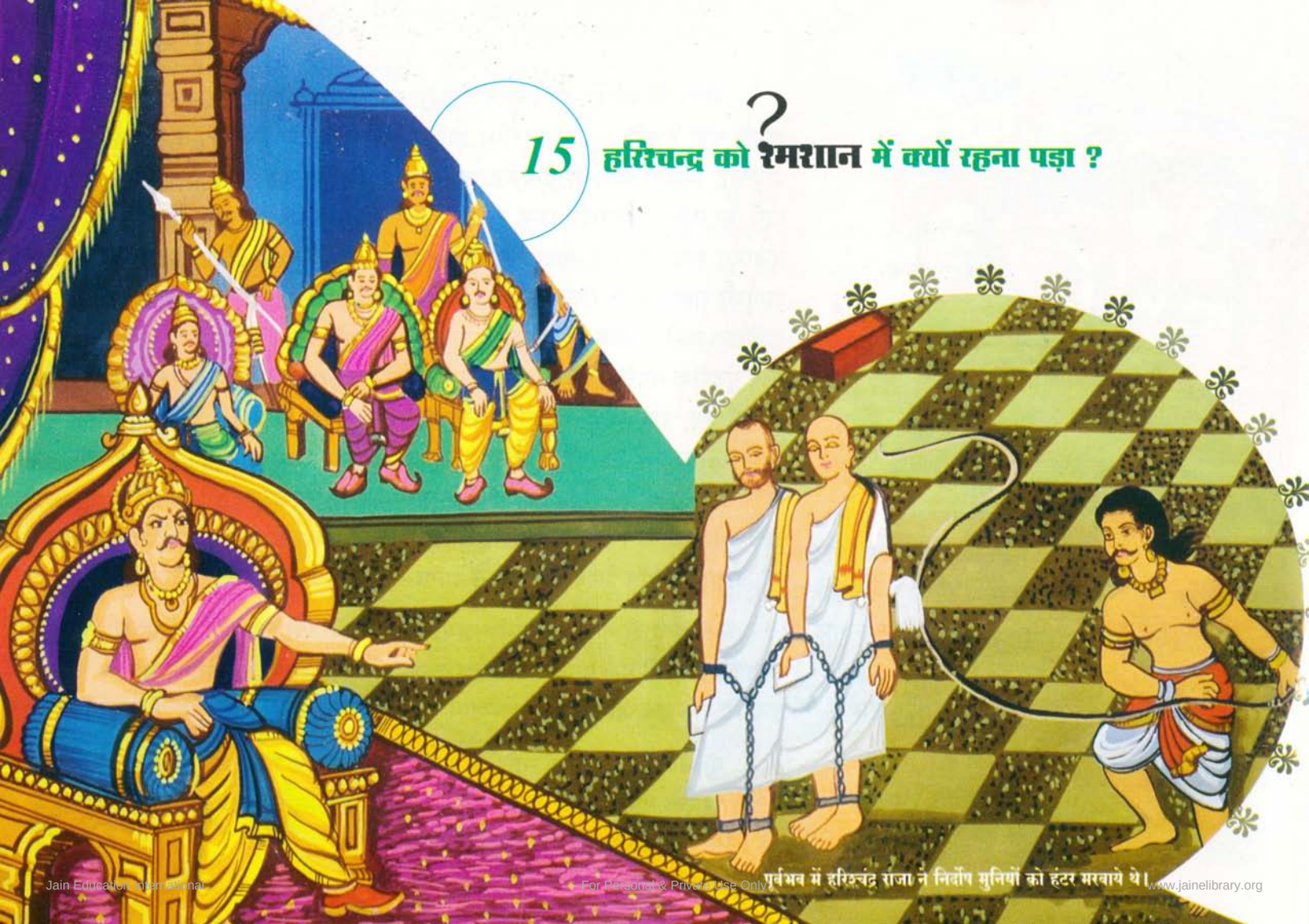

पूर्वभव में हरिश्चंद्र राजा ने निर्दोष मुनियों को हंटर मरवाये थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व भव में भी हरिश्चन्द्र और तारा राजा-रानी थे। एक दिन दो मुनिवरों को देखकर रानी कामवश हो गई। उसने दोनों मुनियों को दासी द्वारा बुलवा कर हाव-भाव दिखाने शुरू किये। मेरु की तरह अड़िग मुनियों के सामने उसकी सभी मुरादें निष्फल गयी।

उसकी प्रार्थना को ठुकराते हुए मुनिवर ने उसे बहुत समझाने की कोशिश करते हुए कहा कि, "विष्टा से भरी हुई आकर्षक अस्तर वाली थैली पर मोहित होना अज्ञानता है। उसी तरह मलमूत्र से भरे मानवीय शरीर पर मोहित होना अज्ञानता है, इत्यादि अनेक तरीकों से दोनों मुनियों के द्वारा समझाने पर भी वह टस से मस न हुई। क्योंकि जिसे मोह का नशा चढ़ा हुआ हो, मोह के उल्टे चश्मे लगे हुए हो, तो सच्ची बात उसके गले कैसे उतरे ?... निराश होकर रानी ने छेड़ी हुई नागिन की तरह बदला लेने के लिये हाहाकार मचा दिया। मेरे शील के ऊपर इन दुराचारी साधुओं ने आक्रमण किया है। बचाओ ! बचाओ !

सिपाहियोंने मुनियों को पकड़कर राजा के सामने उन्हें खड़े किये।

राजा की आँखों में से अग्नि की ज्वाला बरसने लगी। अरे... रे.. ऐसी नीचवृत्तिवाले ये साधु हैं। जाओ... कोड़े (हन्टर) मार-मार कर इनको अधमरा बना दो..... और कारागार में डाल दो ! इनको रोज के १००-१०० कोड़े मारना।

एक महीने के बाद राजा को वस्तु स्थिति मालूम पड़ने पर उन्हें जेल से मुक्त कर दिया। राजा व रानी ने क्षमा माँगी । किंतु आलोचना-प्रायश्चित नहीं लिया। अतः हरिश्चन्द्र राजा के भव में उन्हें चंडाल के घर पर १२ साल तक स्मशान में काम करने के लिए रहना पड़ा तथा तारा रानी पर राक्षसी होने का कलंक आया व पुत्र रोहित का वियोग हुआ।

ये सारे कष्ट उन्हें पूर्वभव में किए हुए पापों की आलोचना-प्रायश्चित न लेने से आए। यह जानकर हमें भी आलोचना-प्रायश्चित लेना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

16 आलोचना न लेने से दुःखी बने श्रीपाल राजा

श्रीपालजी पूर्वभव में श्रीकान्त नाम के राजा थे। एक दिन नगर से मलिन वस्त्र वाले मुनिश्री को देखकर तिरस्कार भरे शब्दों में फटकारते हुए उन्होंने मुनि से कहा कि तुम कोढ़ी हो।

दूसरी बार श्रीकान्त राजा ने नदी के किनारे कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े हुए मुनि के प्रति तिरस्कार करते हुए उनको पानी में डुबकी लगवाई। मुनि ने तो उपसर्ग जानकर समभाव से सहन कर किया, परंतु श्रीकांत को कर्म का बंध हो गया।

श्रीकांत राजा ने इन दोनों पापों की आलोचना न ली, इसलिये दूसरे भव में श्रीपालजी को कोढ़ रोग हुआ। उस कर्म को भुगतने के बाद पानी में डुबाने का कर्म उदय होने पर धवल सेठ ने उन्हें समुद्र में गिराया, परन्तु वहाँ पर नवपद के ध्यान के प्रताप से मगरमच्छ की पीठ पर गिरने के कारण बच गये।

प्रायश्चित न लेने के फल बहुत दुःखदायी होते हैं। अतः छोटे-से पाप की आलोचना भावपूर्वक लेनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

17

चोरी की सज़ा व देवकी माता

वसुदेव की पत्नी देवकी के जीव ने पूर्व भव में सौतन के सात रत्न चुराये थे। मगर जब सौतन बहुत आकुल-व्याकुल हुई, तब दया से आर्द्र होकर उसने एक रत्न किसी तरह वापस दे दिया। इस चोरी की आलोचना देवकी के जीव ने नहीं ली। उसके बाद वही जीव आगे जाकर देवकी बना।

भद्दिल ग्राम में नागिल सेठ रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम सुलसा था। 'उससे मरे हुए बच्चे ही जन्मेंगे,' ऐसी भविष्यवाणी एक नैमित्तिक ने की थी। इसलिए उसने हरिनैगमेषी देव की साधना की। देव ने उसे स्पष्ट कहा कि तेरा पुण्य नहीं है कि तुझसे जीवित संतान जन्म पाये, इसलिए मैं अपनी शक्ति से दूसरे के संतान तुझे अर्पण करूँगा। तू उन्हें बड़ा करके खुद को पुत्रवती समझना। 'मामा नहीं तो काना मामा' इस कहावत के अनुसार सुलसा ने देव की बात को स्वीकार कर लिया।

देवकी के विवाह प्रसंग पर अईमुत्ता मुनि ने कंस की पत्नी जीवयशा को कहा कि ''देवकी की सातवी संतति कंस का घात करेगी। इसलिये मृत्यु से भयभीत बने हुए कंस ने देवकी के प्रथम सात संतानों को वसुदेव से प्राप्त करने की स्वीकृति प्राप्त कर उन्हें मारने का संकल्प किया, परन्तु जन्म पानेवालों का पुण्य प्रबल होने से क्रमशः जब देवकी के पुत्र जन्म पाते गये, तब हरिनैगमेषी उन्हें सुलसा के पास रख देता और सुलसा के पास से मरी हुई संतानें देवकी के पास रख देता।

कंस उन मुर्दों पर छुरी चला देता और खुश होता। इस प्रकार छः संतानों का वियोग देवकी को हुआ। बाद में उन छः संतानोंने नेमिनाथ भगवान के वचन से प्रतिबोध पाकर दीक्षा ली। देवकी से जब सातवीं संतान कृष्णजी जन्म पाए, तब वसुदेव ने उन्हें यशोदा को सौंपा और उसकी लड़की देवकी के पास रखी। कंस ने उसकी नाक काट ली। इस प्रकार छः रत्न की चोरी का प्रायश्चित न लेने से देवकी को छः पुत्रों का वियोग हुआ। एक रत्न वापस दिया था, इसलिये कृष्ण का थोड़े समय के लिये वियोग हुआ, परंतु बाद में स्वयं उन्हें कुछ समय बड़ा कर सकी।

इससे हमें सीखना चाहिये कि ईर्ष्या अथवा लोभ से किसी भी प्रकार की चोरी अपने जीवन में हो गयी हो, तो अवश्य प्रायश्चित की निर्मल गंगा में स्नान करके शुद्ध और भाररहित हो जाना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

18 ढंढण कुमार और अंतराय

ढंढण कुमार का जीव पूर्वभव में किसानों का निरीक्षक था, परन्तु जब किसानों को भोजन करने की छुट्टी का समय होता, तब वह किसानों से कहता कि ''एक-एक चक्कर मेरे खेत में काट दो, जिससे मुझे खेत जोतना न पड़े।'' इस प्रकार मुफ्त में काम करवा कर उसने भोजन में अंतराय किया और इसकी आलोचना नहीं ली, तो दूसरे भव में नेमनाथ भगवान के पास दीक्षा लेकर जब वे ढंढण मुनि बने, तब उन्होंने अभिग्रह किया कि यदि मेरी स्वयं की लब्धि से आहार मिलेगा, तो ही पारणा मैं करूँगा, अन्यथा नहीं। यहाँ दूसरों को भोजन में किये हुए अंतराय के कारण बांधा हुआ अंतराय कर्म उदय में आया। शास्त्रकार ने कहा है कि, ''बंध समये चित्त चेतीये रे, उदये शो संताप'' अरे जीव ! कर्मों को बांधते समय विचारना चाहिये, उदय आने पर रोने से क्या फायदा... हँसते हुए बांधे कर्म रोने से भी नहीं छूटते.... छः छः महिने तक घूमे, परंतु उनको स्वयं की लब्धि से गोचरी नहीं मिली। एक दिन नेमिनाथजी ने ढंढण मुनि को सर्वश्रेष्ठ कहा, यह सुनकर आये हुए कृष्णजीने उनका रास्ते में वंदन किया, यह देखकर एक पुण्यशाली ने ढंढण मुनि को गोचरी वहोरायी। नेमनाथ भगवान ने ढंढण मुनि से कहा... अरे ढंढण ! ये तो कृष्ण महाराजा आपको वंदन कर रहे थे, इसलिये भावित होकर उसने आपको गोचरी वहोरायी है... इस प्रकार श्रीकृष्ण के प्रभाव (लब्धि) से आपको गोचरी वहोराई गयी है, अतः आपकी लब्धि से यह आहार नहीं मिला है.. स्वयं का अभिग्रह पूरा नहीं हुआ है, यह जानकर वे गोचरी परठवने गये। परठवते परठवते शुक्ल ध्यान में चढ़कर उन्होंने केवलज्ञान को प्राप्त किया। आहार के अन्तराय की आलोचना न ली, उससे कितना सहन करना पड़ा... इसलिये हे भविजनो ! आलोचना अचूक लेनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ढंढणकुमार का जीव निरीक्षक किसानों को कहता है, कि मेरे खेत में एक-एक चक्कर लगाकर फिर भोजन करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

19 द्रौपदी को पांच पति मिले...

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुकुमालिका नाम की साध्वीजी जंगल में वैशाख महिने के दिनों में आतापना लेती थी, यानी कड़ी धूप सहन करती थी। इतने में वहाँ पाँच व्यक्ति एक वेश्या को लेकर आये और वे उसके भिन्न-भिन्न अंगों का स्पर्श करते करते उसके साथ क्रीड़ा करने लगे। ... अरे ! कामान्ध लोग लाज-शरम को भी छोड़ देते हैं... इस दृश्य पर साध्वीजी की नज़र गिरी और वह भान भूल गयी। और उस समय सुकुमालिका ने नियाणा किया, यानी इस धर्म के बदले में अगले भव में पांच पति की प्राप्ति का दृढ़ संकल्प किया। उसकी आलोचना नहीं ली।

सुकुमालिका मर कर जब द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी बनी, तब उसने राधावेध को साधने वाले अर्जुन के गले में वरमाला डाली, परन्तु दिव्य प्रभाव से पाँचों पांडवों के गले में वह माला दिखाई दी। द्रुपदराजा चकित हो गये। अरेरे ! यह क्या ? इतने में आकाशवाणी हुई कि जो हुआ है, वह बराबर है, फिर वहाँ चारण मुनि आये और समस्या का हल निकाला कि जिस दिन जिसकी बारी होगी, उसके अलावा दूसरे को मन से भी वह नहीं इच्छेगी, जो अत्यंत कठिन कहलाता है।

सुकुमालिका ने आलोचना नहीं ली, इसलिये यह आश्चर्यकारी घटना बनी अर्थात् वह पाँचों पांडवों की पत्नी बनी, नहीं तो विचारों की आलोचना के प्रायश्चित में कोई मासक्षमण नहीं करने पड़ते, परंतु जीव अहंभाव से आलोचना लेने का टाल देते हैं। जिससे भवांतर में उसके जीवन में भयंकर अनहोनियाँ बनती है। दुःख की रामायण और महाभारत में जीवन धूलधानी हो जाता है। करुण चीखें और वेदना से भरे हुए आँसुओं के अलावा कुछ नहीं रहता। इसलिये ज्ञानी भगवंत कहते हैं कि, अरे ! भाई चेतिये.... बाजी अभी भी अपने हाथ में है। प्रायश्चित से जीवन की काली किताब को धो दीजिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

20 ईर्ष्या की आलोचना न ली...

ईर्ष्या एक ऐसी आग है, जो सामने वाले व्यक्ति को कुछ नहीं कर सकती, परंतु व्यक्ति स्वयं ही उस आग में जल-जलकर ख़ाख हो जाता है। छोटे-बड़े, गरीब-अमीर सभी साधुओं की सच्ची भक्ति और वैयावच्च करने वाले पूर्व में चक्रवर्ती के पुत्र बाहु-सुबाहु मुनि के वैयावच्च गुण की एक दिन गुरुदेवश्री ने अनुमोदना की। तब पीठ व महापीठ के दिमाग में उनके प्रति ईर्ष्या खड़ी हुई। ये दोनों वैयावच्च में पानी लाना, गोचरी लाना, पाँव दबाना इत्यादि.... शारीरिक श्रम (मजदूरों का काम) करते हैं और गुरुदेवश्री इनकी प्रशंसा करते हैं। हम शास्त्रों में कितना बौद्धिक श्रम करते हैं? उसका महत्त्व कोई गिनती में ही नहीं। इस प्रकार दोनों मुनियों के दिमाग में ईर्ष्याभाव खड़ा हुआ। परंतु यह नहीं सोचा कि, अरे भाई! समय-समय पर सब की कीमत होती है, लेकिन यह बात समझे कौन? उनका मन तो ईर्ष्या की आग में जल रहा था।

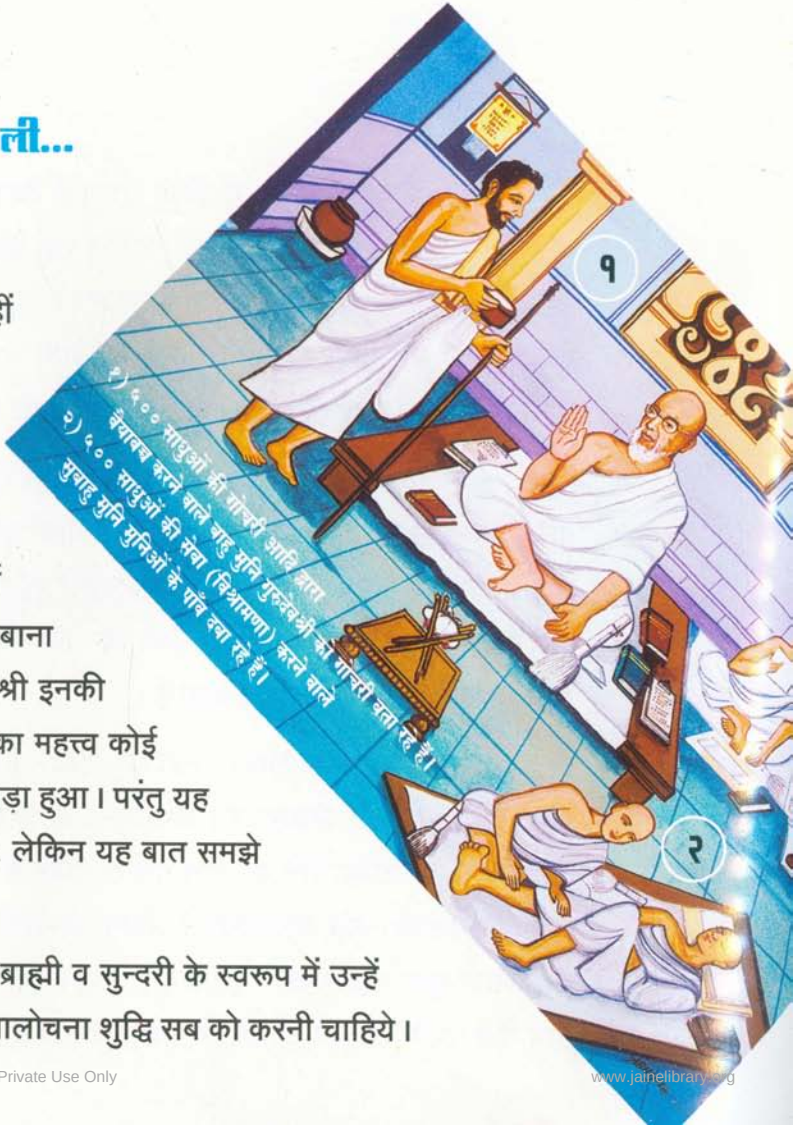

इस प्रकार उस ईर्ष्या की आलोचना न ली, तो अगले भव में ब्राह्मी व सुन्दरी के स्वरूप में उन्हें स्त्री बनना पड़ा। और बाहु-सुबाहु, भरत-बाहुबली बने। इसलिये आलोचना शुद्धि सब को करनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

21 अंजनासुन्दरी दुःखी क्यों हुई ?

एक राजा की दो पत्नियाँ थी। लक्ष्मीवती और कनकोदरी। लक्ष्मीवती रानी ने अरिहंत-परमात्मा की रत्नजड़ित मूर्त्ति बनवाकर अपने गृहचैत्य में उसकी स्थापना की। वह उसकी पूजा-भक्ति में सदा तल्लीन रहने लगी। उसकी भक्ति की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। ''धन्य है रानी लक्ष्मीवती को, दुख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।'' यह रानी तो सुख में भी प्रभु सुमिरन करती हैं, धन्य है !!' बच्चे, बूढे, नौजवान सभी के मुँह पर एक ही बात-धन्य है रानी लक्ष्मीवती, धन्य है इसकी प्रभु भक्ति। लोक में कहा जाता है कि जिसको ज्वर चढ़ जाता है, उसे अच्छे से अच्छा भोजन भी कडवा लगता है। रसगुल्ला खिलाओ, तो भी वह व्यक्ति थू....थू करेगा। ईर्ष्यालु व्यक्ति की यही दशा होती है। रानी कनकोदरी के अंग-अंग में ईर्ष्या का बुखार व्याप्त हो गया। अपनी सौतन की प्रशंसा उससे सहन नहीं हो पाती थी। 'लोग मेरी प्रशंसा क्यों नहीं करते?' यह बात वह निरन्तर सोचती रहती थी। 'तू भी धर्म कर, तू भी परमात्मा की पूजा-सेवा कर। अरे ! उससे भी बढ़कर लोग तेरी प्रशंसा करेंगे।' 'मैं करूँ या नहीं करूँ, मगर लक्ष्मीवती की प्रशंसा तो होनी ही नहीं चाहिये।' इस प्रकार के विचारों की आंधी कनकोदरी के दिल और दिमाग में ताण्डव नृत्य मचाने लगी। देखिये ! ईर्ष्या की आग, ईर्ष्या की धुन कैसी-कैसी भयंकर विपदाएं खड़ी कर देती हैं? कनकोदरी ने निर्णय लिया ''मूलं नास्ति कुतः शाखा'' जब बाँस ही नहीं रहेगा, तो बांसुरी बजेगी कैसे? लोग इसकी प्रशंसा करते हैं आखिर क्यों? मूर्ति हैं इसलिये न ! मूर्ति है, इसलिय वह पूजा करती है, जिससें लोग प्रशंसा करते हैं और मुझे जलना पड़ता हैं। यदि मूल ही काट दिया जाये, तो बस, चलो छुट्टी !! और वह सक्रिय हो उठी। ईर्ष्या से अन्धी बनी हुई कनकोदरी एक भयंकर कृत्य करने के लिये तत्पर हो गयी। अत्यंत गुप्त रीति से वह गई गृहमंदिर में और परम कृपालु परमात्मा की मूर्ति को उठाकर डाल दी...अहा...हा! कूड़े करकट में...अशुचि स्थान में... अरे ! ऐसी गंदगी में जहाँ से भयंकर बदबू ही बदबू आ रही थी। मगर उस अज्ञानान्ध, ईर्ष्यान्ध स्त्री को इस बात का दुःख तो दूर, लेकिन अपार हर्ष था, अपनी नाक कटवा कर जैसे दूसरों के लिये अपशुकन करने का अनहद आनन्द हो। ओह!...'हंसता ते बाँध्या कर्म, रोतां ते नवि छूटे रे। जैसा कर्म करेगा बंदे, वैसा ही फल पायेगा। काश ! कनकोदरी यह जान पाती !!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूरे राज्य में हाहाकार मच गया। तहलका मच गया....चोरी....चोरी !! रानी लक्ष्मीवती की आँखें रो....रो कर सूज गयी। हाय ! मेरे परमात्मा को कौन उठा ले गया? साध्वी जयश्री को इस बात का राज मिल गया। उन्होंने कनकोदरी को समझा-बुझा कर परमात्मा की पुनः स्थापना तो करवा दी। लेकिन कनकोदरी ने इस कृत्य की विधिवत् आलोचना नहीं ली। इसलिये उसे इस कृत्य का भयंकर परिणाम भुगतना पड़ा अंजना सुंदरी के भव में। अंजना सुंदरी को पति-वियोग में बाईस वर्ष तक रो...रो...कर व्यतीत करने पड़े। पूर्व भव में वसन्ततिलका ने उसके इस अपकृत्य का अनुमोदन किया था, अतः उसे भी अंजना के साथ दुःख सहने पड़े। यदि हम किये गये पापों की आलोचना नहीं करते हैं और प्रायश्चित लेकर शुद्ध नहीं बनते हैं, तो उसका अति भयंकर परिणाम भुगतना पड़ता है, जैसे अंजना सुन्दरी की जिन्दगी के वे वियोग भरे वर्ष आँसू की कहानी बन कर रह गये।

22 रानी कुन्तला

कुन्तला रानी ने अपनी सौतों को जिनभक्ति वगैरह सिखाई थी। मगर वे कुन्तला से आगे बढ़ गई। कुन्तला के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई कि मैंने ही सब को धर्म बताया था और ये सभी रानियाँ मुझसे भी धर्म में आगे निकल गयी ! अगर वे आगे बढ़ भी गयी, तो तेरे घर का क्या जाता हैं ? वे करती तो धर्म की क्रिया ही हैं न, नहीं... वे करें उसके लिये मना नहीं, परंतु वे मेरे पीछे होनी चाहिये। अपनी पंक्ति को बड़ी करने के बदले, दूसरों की पंक्ति को मिटा देना, ऐसी ईर्ष्यावृत्ति की आलोचना न लेने के कारण कुन्तला को दूसरे भव में कुत्ती का जन्म मिला। इस जन्म में और करना भी क्या ? सिर्फ भोंकते ही रहना...

किसी की ये पंक्तियाँ कितनी सुंदर हैं, कुत्ते की ईर्ष्यावृत्ति के ऊपर... पूर्ण चंद्रबिंब आकाश में से चांदनी बरसाता हुआ उगा और पूरी नगरी धवल बन गयी। परंतु उसके इस प्रकाश से नगरी के सारे कुत्ते जाग उठे और भोंकने लगे। लेकिन कुत्ता कितना भी भोंके और कितनी बार भी भोंके अमीछींटा बरसाती हुई चांदनी क्यों प्रकाश देना बंद करे ? उसको प्रकाश देता हुआ चंद्रबिम्ब जैसे-जैसे देखे, वैसे-वैसे कुत्ते को ज्यादा से ज्यादा चानक चढ़ती। अर्थात् कुत्ते सारे भोंकने ही लगे... भों !... भों !... यह तो चला ! लेकिन उसके भोंकने से तारे टूट कर गिरने वाले नहीं। तारों का काम तारा करता है और कुत्ते का काम कुत्ता करे। तारा कभी भी फ़रियाद नहीं करता, अरे ! तुझे भोंकना हो, तो भोंक ना... हमें देख-देखकर क्यों भोंकता है। तारे तो टिमटिमाने ही वाले हैं और कुत्ते तो भोंकते ही रहेंगे। यह ईर्ष्यावृत्ति उसके खून में ही होती है।

दूसरे ईर्ष्या करे, तो क्या अपने को भी ईर्ष्या ही करनी ? नहीं कभी भी नहीं, अपने को तो चांदनी की तरह प्रसन्न रहना चाहिये। दूसरे के पास तीन बंगले हैं, चार मारूती हैं और अपने को तो एक के भी फाँफे पड़ रहे हैं, तो क्या ईर्ष्या करनी? नहीं, कदापि नहीं। दूसरे रोज बदाम का सिरा खाते हो और अपने को पेट की भूख मिटाने के लिये रोटी भी मुश्किल से मिलती हो। तब क्या ओरों की ईर्ष्या करनी चाहिये ? नहीं... ध्यान रखना, अगर ऐसी छोटी-सी भी ईर्ष्या हो गयी हो, तो गुरु भगवंत के पास आलोचना लेना मत भूलना। नहीं तो कुन्तला से भी बुरा हाल अपना होगा और फिर कुत्ते बनकर करना भी क्या ? नहीं सामायिक या नहीं पौषध, सिर्फ भोंकते ही रहना... भों...! भों...! भों...!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

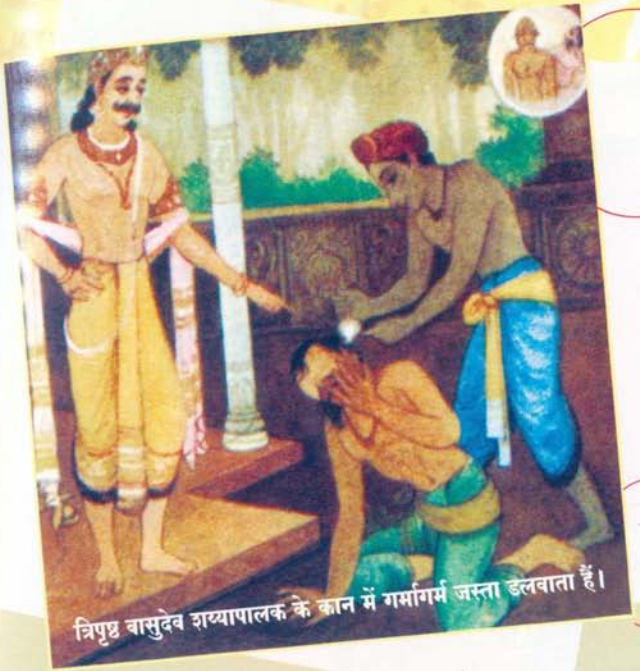

त्रिपृष्ठ वासुदेव शय्यापालक के कान में गर्मागर्म जस्ता डलवाता हैं।

23 भगवान महावीर स्वामी के जीव ने, प्रायश्चित न लिया तो...

त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में एक रानी का तिरस्कार किया और शय्यापालक नौकर के कान में गरमागरम जस्ता डलवाया। उसकी आलोचना नहीं ली... जिससे रानी के जीव ने तीर्थंकर के भव में कटपुतना के रुप में भयंकर शीत उपसर्ग किया और शय्यापालक के जीव ने किसान बन कर प्रभु के कान में खीले ठोके।

24 हरिकेशीबल उत्पन्न हुए चंडालकुल में...

सोमदेव पुरोहित ने दीक्षा लेने के बाद कुल का अभिमान किया था, परंतु उसने कुल के अहंकार की आलोचना न ली, जिससे नीच गोत्र कर्म का बन्ध हुआ। उस कर्म के उदय से चंडालकुल में जन्म लेना पड़ा। लेकिन पूर्व भव में सोमदेव के जीव ने दीक्षा लेने के बाद विशेष आराधना करके बहुत सारे कर्मों की निर्जरा की थी, इसलिये थोड़े कर्म शेष रहने के कारण हरिकेशीबल के भव में चरम शरीरी के रूप में जन्म प्राप्त किया था। पूर्वभव में आराधना के संस्कारो के कारण हरिकेशीबल के भव में दीक्षा लेकर शुक्लध्यान पर चड़कर केवलज्ञानी बन कर मोक्ष में गये, परंतु आलोचना न ली, इसलिये एक बार तो कर्म राजा ने उन्हें चंडाल के भव में फेंक दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१) कलावती रानी ने पूर्वभव में तोते के दोनों पंख काटे थे।

२) जिससे उसको अपनी दोनों कलाइयाँ कटवानी पड़ी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

25 कलावती की कलाईयों का छेदन किया गया...

कलावती रानी पूर्वभवमें तोते के दोनों पंख को काटकर खुश हई थी, उसकी आलोचना नहीं ली। उसके बाद क्रम से तोते का जीव राजा बना, उसकी रानी कलावती बनी। एक दिन अचानक रानी के हाथ में कंकण (हाथ के आभूषण) पहने हुए देखकर दासीने पूछा कि, ''ये कहाँ से आये?'' रानी ने जवाब दिया, ''जो हमेशा मेरे मनमें रहता है और जिसके मन में सदा मैं रहती हूं, रात-दिन जिसे मैं भूला नहीं पाती, जिसको देखने से मेरे हर्ष का कोई पार नहीं होता, उसने ये भेजे हैं।'' ऐसे वचन गुप्त रीति से सुनकर राजा शंका में पड़ गया कि क्या रानी दुराचारिणी है? जिससे मेरे अलावा किसी दूसरे में उसका मन है, जिसने ये गहने भिजवायें हैं। राजा क्रोध से आगबबूला हो गया और सिपाहियों को कहा कि गर्भवती रानी को जंगल में ले जाओ और कंकण सहित कलाईयों को काटकर ले आओ। सिपाही रानी को जंगल में ले गये। वे कलाईयां काटकर ले आये। रानी ने पुत्र को जन्म दिया कि तुरंत ही महासती के शील के प्रभाव से देव ने दोनो हाथों को ठीक कर दिया और महल बना कर जंगल में मंगल कर दिया।

राजा ने कंकण पर जब रानी के भाई जय-विजय के नाम देखे, तब राजा को बहुत अफ़सोस हुआ और किसी भी तरह खोज करवा कर रानी को मान-सन्मान पूर्वक ले आये। केवलज्ञानी भगवान को पूछने पर पूर्वभव में तोते के पंख काटने का यह फल मिला है। यह जानकर पुत्र को राज्य अर्पण कर राजा-रानी दोनों ने संयम ग्रहण किया। फिर २१वें भव में कर्मो का क्षय कर रानी कलावती की आत्मा मोक्ष में गई। पूर्वभव में आलोचना न ली, तो कलाईयां कटवानी पडी। इसलिये आलोचना लेने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं रखना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

26 अंडे लिये हाथ में...

रानी ने कौतुक से मोरनी के अंडो को हाथ में लिया।

१६ घडी अर्थात् ६ घंटे २४ मिनिट के बाद बारिश से धुले हुये अंडो को मोरनी ने पोसा।

रूक्मिणी का जीव एक भव में राजा की रानी थी। राजा-रानी बगीचे में घूमने गये। वहाँ मोरनी ने अंडे रखे थे। रानी ने कौतुक से मोरनी के अंडे हाथ में लिये और... उसके हाथ कुंकुमवाले होने से अंड़े कुंकुमवर्ण वाले हो गये। जिससे मोरनी ने अंडो को नहीं पोसा। १६ घड़ी यानी ६ घंटे २४ मिनिट के बाद बारिश हुई। तब अंड़े धुल जाने से मोरनी ने उनको पोसा! रानी ने उसकी आलोचना नहीं ली। इस कारण से रूक्मिणी के भव में १६ वर्ष तक संतान का वियोग हुआ। नेमिनाथ भगवान को पूछने से प्रभु ने रूक्मिणी का समाधान किया। उसके बाद दीक्षा लेकर रूक्मिणी मोक्ष में गयी।

अंड़े को हाथ लगाने से १६ घड़ी का वियोग होने पर १६ वर्ष के वियोग का कर्म बंध हो गया तो फिर अंड़े और आमलेट खाने वाले को कैसा कर्मबंध होगा? और उसकी आलोचना नहीं लेनेवाले की हड्डी-पसली एक हो जायेगी। इसलिये आलोचना लेनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

27 देवानंदा के गर्भ का अपहरण क्यों हुआ ?

पूर्वभव में देवानंदा का जीव जेठानी और त्रिशला का जीव देरानी था। देरानी की रत्नपेटी में से बहुत रत्न जेठानी ने चुरा लिये। झगड़ा होने पर जैसे-तैसे कुछ रत्न वापस दिये। देरानी ने गुस्से में आकर ऐसा कहा कि, ''तुम्हारी संतान मुझे मिले।'' जेठानी ने आलोचना नहीं ली। इस कारण से भवांतर में देवानंदा के गर्भ में रहे हुए भगवान महावीर स्वामी का संक्रमण त्रिशला की कुक्षि में हुआ। इस प्रकार कथा प्रचलित हैं। इसलिये चोरी की आलोचना लेने में लापरवाही नहीं करनी चाहिये।

28 ज्ञान की विराधना की आलोचना नहीं ली।

आचार्य श्री वसुदेवसूरीश्वरजी म.सा. ने पूर्वभव में गुस्से में आकर ५०० शिष्यों को वाचना देना बंद किया। १२ दिन मौन रह कर आलोचना लिये बिना ही उनकी मृत्यु हो गयी। दूसरे भव में वरदत्त के रुप में उत्पन्न हुए। शरीर में कुष्ट रोग फैल गया। पढ़ने पर एक अक्षर भी उन्हें नहीं चढ़ता था। फिर विजयसेनसूरीश्वरजी महाराज के पास हक़ीकत का पता चलने से ज्ञानपंचमी की आराधना की और तीसरे भव में मोक्ष में गये। ज्ञानविराधना की आलोचना न लेने से कुष्ट रोग हुआ और ज्ञान नहीं चढ़ता था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

29 देवद्रव्यभक्षण की आलोचना नहीं ली...

साकेतपुर नगर के सागर सेठ मंदिर बँधवाने का हिसाब-किताब संभालते थे। कमाई करने की लालच से दुकान में से मज़दूरों को पैसे के बदले में खुद की दुकान में से माल-मसाला देते थे। इस प्रकार १००० कांकणी अर्थात् १२.५० रुपिये की कमाई की। उसकी आलोचना न ली। जिससे अंडगोलिक मत्स्य, बीच में तिर्यंच के भव करके सातों नरक में दो-दो बार गमन, १०००-१००० भव-सूअर, बकरा, हरिण, खरगोश, जंगली मृग, लोमड़ी, बिल्ली, चूहा, छिपकली और सर्प के तथा १ लाख

विकलेन्द्रिय के भव उसके हुए। उसके बाद दरिद्र मनुष्य बनकर जब ज्ञानी गुरु को पूछा, तब गुरु ने उसका कारण बतलाया। सागर सेठ के जीव ने आलोचना लेकर १००० गुना १२५०० रुपये देवद्रव्य में खर्च किये और तीर्थंकर नामकर्म बाँधकर तीसरे भव में वे मोक्ष में गये।

देवद्रव्य के भक्षण की आलोचना न ली, तो तीर्थंकर की आत्मा की भी ऐसी दुर्दशा हुई। इसलिये सत्पुरुषों को आलोचना लेने के लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आलोचना लेने से बने चमकते सितारे

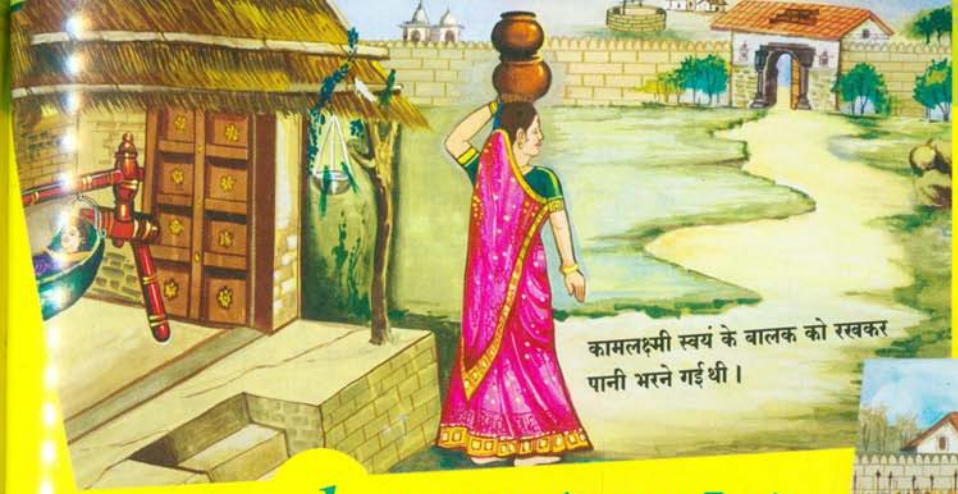

कामलक्ष्मी स्वयं के बालक को रखकर पानी भरने गई थी।

1 माता पुत्र केवलज्ञानी बने...

लक्ष्मीतिलक नगर में एक दरिद्र वेदसार नामक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम कामलक्ष्मी था। वेदसार ब्राह्मण के वेदविचक्षण नाम का पुत्र था। प्रतिपक्षी राजा ने लक्ष्मीतिलक नगर पर आक्रमण कर दिया। कामलक्ष्मी पानी भरने के लिए नगर के बाहर गई थी। आक्रमण के कारण नगर के दरवाजे बन्द कर दिये। अतः कामलक्ष्मी बाहर ही रह गई।

एक सिपाही उसे उठाकर राजा के पास ले गया। राजा ने उसे सौन्दर्य की मूर्ति जानकर अपनी रानी बना ली। कालान्तर में जब वेदविचक्षण बड़ा हो गया। तब उसे घर सौंप कर वेदसार ब्राह्मण अपनी पत्नी की खोज के लिये निकल पड़ा।

सिपाही कामलक्ष्मी को पकड़कर राजा के पास ले गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरी ओर स्वपति पर अनुराग रखने वाली कामलक्ष्मी राजा की अनुमति से प्रतिदिन दान देने लगी, ताकि उसका ब्राह्मण पति उसे किसी भी तरह से याचकसमूह में मिल जाये। एक बार घूमता-घूमता वेदसार ब्राह्मण वहाँ दान लेने आया। कामलक्ष्मी ने उसे पहचान लिया। पास में बुलाकर उसको स्वयं का परिचय दिया और उसके साथ भाग जाने के लिये एक योजना बनाई और कहा कि सातवें दिन मैं चंडीदेवी के मन्दिर में रात को आऊँगी। आप भी वहाँ आ जाना। वहाँ से हम दोनों इष्ट स्थान पर चले जायेंगे।

रानी ने राजा के गले पर तलवार से प्रहार किया।

इसके बाद रानी ने पेटदर्द का बहाना बनाया। अनेक वैद्य आये, परन्तु कोई फर्क नहीं पड़ा। तब कामलक्ष्मी ने राजा से कहा-मैंने एक बार आपकी बीमारी के समय मन्नत (मानता) की थी कि ''हे चंडीदेवी ! यदि यह वेदना मिट गई, तो मैं और राजा दोनों काली चौदस के दिन तेरे पूजन के लिए आयेंगे।'' उसी समय आपकी वेदना शांत हो गई थी। परन्तु बाद में मैं पूजन हेतु जाना भूल गई। अतः हे राजन् ! आने वाली काली चौदस को पूजा करने हेतु चलने का निर्णय कर लीजिये। इसे सुनने के बाद राजा द्वारा निर्णय करने पर वेदना शांत हो गई। इस प्रकार का दिखावा कामलक्ष्मी ने किया। चौदस के दिन घोड़े पर बैठकर राजा-रानी पूजा का सामान लेकर चंडीदेवी के मन्दिर की ओर रवाना हुए। चंडीदेवी के मन्दिर पर पहुँच कर घोड़े से उतर कर राजा व रानी चंडी देवी के मन्दिर की ओर चलने लगे। राजा मन्दिर के बाहर तलवार रखकर मन्दिर के दरवाजे पर माथा झुकाकर ज्योंही प्रवेश कर रहा था, इतने में पीछे से रानी ने तलवार उठाकर राजा के गले पर प्रहार कर दिया। राजा का मस्तक धड़ से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अलग हो गया। कामलक्ष्मी ने अन्दर दीपक के प्रकाश में जाकर देखा, तो वेदसार ब्राह्मण को सर्प ने डस लिया था। उसका शरीर नीला हो गया था। उसके प्राण पंखेरू उड़ गये थे। रानी ने विचार किया कि ''अब क्या करूँ, यदि राजभवन मे लौटूंगी, तो राजहत्या का आरोप शायद मुझ पर आ जायेगा।'' अतः रानी घोड़े पर बैठकर जंगल में भाग गई। भागते-भागते एक नगर में माली के घर घोड़े को खड़ा कर स्वयं एक मन्दिर में गई। वहाँ बाजे बज रहे थे। अलंकार और श्रृंगार से सज्जित एक नारी को देखकर एक स्त्री ने उससे पूछा-तुम कौन हो? कहाँ से आयी हो? किस की अतिथि हो? उसने असत्य का जाल बिछा कर कहा कि मैं अपने पति के साथ ससुराल जा रही थी। बीच में चोर मिले और उन्होंने मेरे पति को मार डाला। मैं किसी प्रकार से बच कर यहाँ आई हूँ। यहाँ मेरा कोई नहीं हैं ! मैं निराधार हूँ। ये बातें सुनकर उस स्त्री ने मायावी वचनों से कामलक्ष्मी को आकर्षित किया और अपने घर ले गई। वह स्त्री एक वेश्या थी। उसने कामलक्ष्मी को भी गीत नृत्य आदि कलायें सिखाकर वेश्या बना दी।

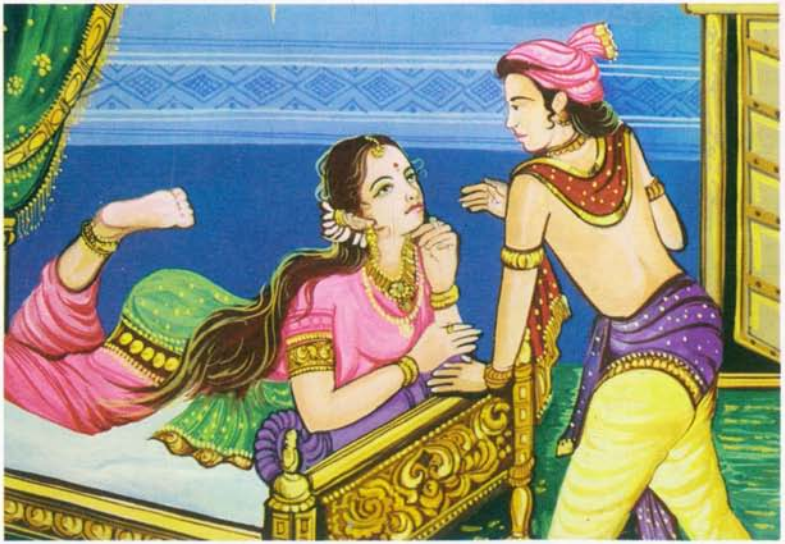

कामलक्ष्मी वेश्या के वहाँ उसका पुत्र वेदविक्षण आया।

एक दिन वेदविचक्षण ने विचार किया कि मेरी माता की तलाश में पिताजी गये थे। माताजी तो आई नहीं, परन्तु पिताजी भी नहीं आये। क्या कहीं वे भी खो गये? क्या हुआ ? मैं उनकी तलाश करने जाऊँ । यह विचार करके युवक वेदविचक्षण घर से निकला। घूमते-घूमते वह उसी वेश्या के यहाँ आया और वहाँ फँस गया। कुछ समय बीतने के पश्चात् धन समाप्त हो जाने पर वह वेश्या का घर छोड़कर जाने लगा, तब उसने वेश्या को स्वयं का परिचय दिया। उसे सुनकर कामलक्ष्मी को मन में खूब दर्द हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कामलक्ष्मी नदी के बीच चिता जलाकर उसमें कूदने जा रही थी कि उतने में जोरदार बारिश हुई व नदी में बाढ़ आ गई।

वह युवक तो चला गया। उसके बाद कामलक्ष्मी के मन में विचार आया कि ''अरर ! यह मैंने भयंकर भूल की हैं, अरर ! मैंने पुत्र के साथ दैहिक संबंध कर लिया। उसकी सज़ा यही है कि, मैं जाज्वल्यमान चिता में जलकर भस्म हो जाऊँ।'' यह बात प्रधान वेश्या को मालूम हुई। उसने कामलक्ष्मी को

गोवालने डूबती हुई कामलक्ष्मी को पकड़कर बाहर निकाला।

खूब समझाया, परन्तु वह न मानी। उसने नदी के बीच में चिता जलाई और उसमें कूद पड़ी। संयोग से उसी समय भारी बरसात आ गई और चिता बुझ गई। नदी में बाढ़ आने से नदी के प्रवाह में कामलक्ष्मी बह गई। एक ग्वाले की नज़र नदी के प्रवाह में बहती हुई उस पर पड़ी और उसने उसको खींच कर बाहर निकाली। अनेक उपचार करने पर कामलक्ष्मी

दौड़ने के कारण एक स्त्री का पानी का मटका फूट गया, वह रोती है। और दूसरी कामलक्ष्मी का दही का मटका फूट गया, तो भी वह हँसती है।

स्वस्थ हुई। तब ग्वाले ने उसे अपनी पत्नी बना ली।

एक बार वह मटका भर कर दही बेचने गई। उसके साथ एक दूसरी स्त्री पानी का मटका भरकर चली आ रही थी, उनके पीछे हाथी दौड़ता हुआ आ रहा था। दोनों स्त्रियां घबराहट से दौड़ने लगी। इतने में उनके मटके फूट गये। पानी का मटका जिसका फूटा था, वह रोने लगी और दही का मटका जिसका फूटा था, वह हँसने लगी। एक पुरोहित आकर उसके हँसने का कारण पूछने लगा, तब उसने कहा- ''मैं किस-किस दुःख को रोऊँ, बहुत दुःख आ जाने से थोडा दुःख, दुःख रूप नहीं लगता। जैसे बड़ा ऋण हो जाय, तो छोटा ऋण, ऋण रूप में नहीं सताता।'' उसने बगीचे में बैठकर स्वजीवनी सुनाई। वह पूछने वाला पुरोहित और कोई नहीं, उसका ही पुत्र वेदविचक्षण था। सारा वृत्तांत सुनकर उसको मार्मिक चोट लगी। अरर ! यह मैंने क्या किया ? माता के साथ संभोग ! धिक्कार हो मेरी विषय वासना को। मां बेटे दोनों करूणा के भंडार तुल्य पूज्य गुरुदेव से आलोचना-प्रायश्चित लेकर चारित्र स्वीकार कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये। जिस प्रकार हृदय में किसी भी प्रकार का शल्य या शरम रखे बिना शुद्ध भाव से आलोचना लेकर माता-पुत्र शुद्ध बने। उसी प्रकार अपने को भी लज्जा रखे बिना शुद्ध आलोचना लेनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संतान के अत्यंत राग से पुष्पकेतु राजा ने प्रजा की सभा बुलाकर, उसके कपट से पुत्री का विवाह पुत्र के साथ करने की अनुमति प्राप्त की।

2 आलोचना-प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध बनी हुई पुष्पचूला...

पुष्पभद्र नगर में पुष्पकेतु नाम का राजा था। उसकी पुष्पवती नाम की रानी थी। उसने पुष्पचूल और पुष्पचूला नाम के युगल को जन्म दिया। पुष्पचूल और पुष्पचूला परस्पर अत्यन्त प्रेम से बड़े हुए। दोनों एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते थे। अब राजा विचार करने लगा कि यदि पुत्री पुष्पचूला का विवाह अन्यत्र करूँगा, तो दोनों का वियोग हो जाएगा। अतः उसने प्रजाजनों की सभा बुलाई। सभा में पुष्पकेतु राजाने प्रश्न किया कि अगर मेरी धरती पर रत्न उत्पन्न हो जाये, तो उसे कहाँ जोड़ना, यह अधिकार किसका है? प्रजा ने उत्तर दिया कि, उत्पन्न हुए रत्न को जोड़ने का अधिकार आपको ही है। राजा ने घोषणा की-कि मैं इस पुत्ररत्न व पुत्रीरत्न को शादी द्वारा जोड़ता हूँ। इस प्रकार कपट से प्रजाजनों की सम्मति लेकर उनका परस्पर विवाह कर दिया। इस प्रकार के अन्याय से पुष्पवती के हृदय को गहरी चोट लगी। वैराग्य आने से उसने दीक्षा ले ली। मर कर देव बनी। पुष्पकेतु राजा भी कालांतर में परलोक में चला गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाई-बहन पति-पत्नी बन कर काल व्यतीत करने लगे। इतने में तो उस देव (मातुश्री के जीव) ने अपने अवधिज्ञान से देखा और मन में विचार किया कि ये दोनों पूर्वभव में मेरे पुत्र-पुत्री थे और अब इस प्रकार के अनैतिक वैषयिक पाप से वे नरक में जायेंगे। अतः उनको सन्मार्ग पर लाने के लिए उस देव ने पुष्पचूला को रात्रि में नरक का स्वप्न दिखाया। उससे भयभीत बनी हुई पुष्पचूला ने सुबह जाकर राजा से बात कही। राजा ने नरक का स्वरूप जानने के लिए अन्य दर्शनों के योगियों को बुलाया। उन्होंने कहा-''हे राजन्! शोक, वियोग, रोग आदि की परवशता ही नरक का दुःख है।'' पुष्पचूला ने कहा-''मैंने जो नरक का स्वप्न देखा है, वह ऐसे दुःखों से सर्वथा भिन्न है, वैसे दुःखों का तो अंशमात्र भी यहाँ नहीं दिखता है।'' तब जैनाचार्य अर्णिकापुत्र को बुला कर पूछा। उन्होंने यथावस्थित जैसे दुःख रानी ने स्वप्न में देखे थे, वैसे ही सातों नरक के भयंकर दुःखों का वर्णन किया।

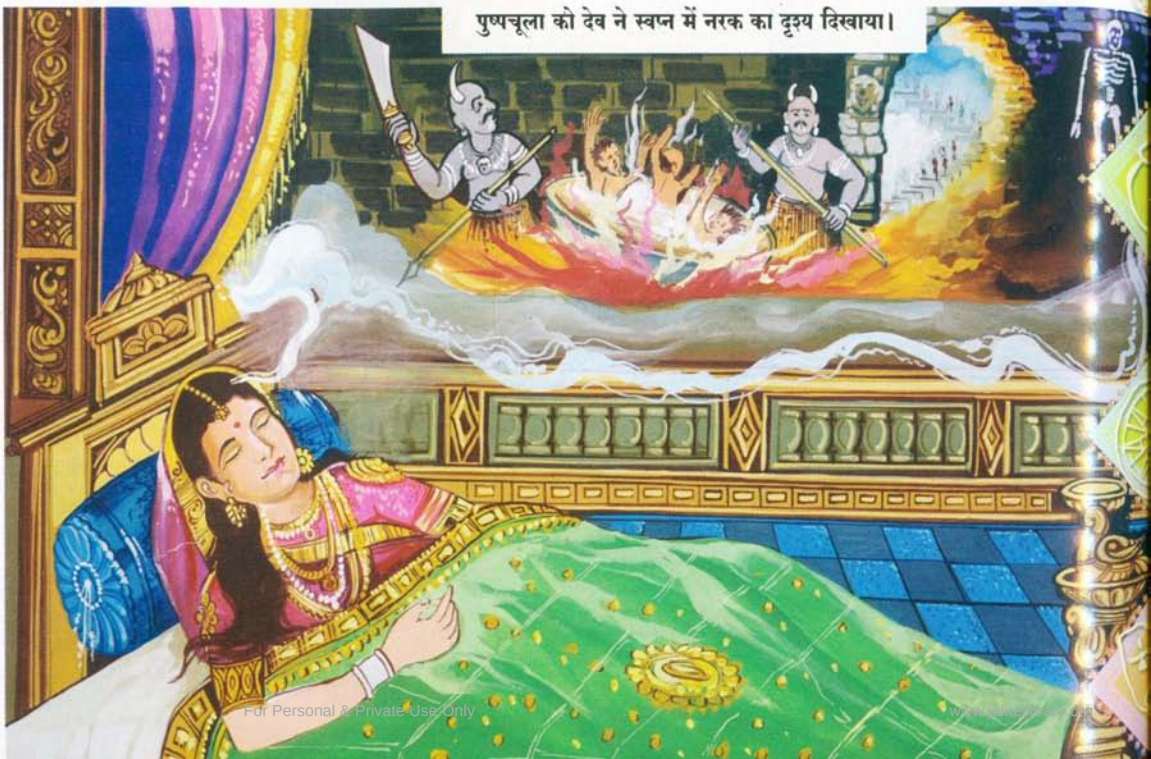

पुष्पचूला को देव ने स्वप्न में नरक का दृश्य दिखाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसके बाद देव ने देवलोक के सुख का स्वप्न दिखाया। पुष्पचूला ने दूसरे दर्शनकारों को बुलाकर उन्हें देवलोक का स्वरूप पूछा। वह सत्य जान न पायी। पुनः अर्णिकापुत्र आचार्य को बुलाकर पूछा, तो उन्होंने देवलोक का स्वरूप वैसा ही बताया, जैसा कि पुष्पचूला ने स्वप्न में देखा था। इससे वैराग्य पाकर चारित्र लेकर आलोचना-प्रायश्चित आदि से निरतिचार चारित्र का पालन कर वैयावच्च से उसी भव में केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गई। यहाँ विशेष विचारने जैसा हैं कि कारणवश भाई-बहन पति-पत्नी बन गये, परन्तु आलोचना प्रायश्चित करके चारित्र ग्रहण कर पुष्पचूला मोक्ष तक पहुँच गई। अतः हमे भी स्वयं को शुद्ध बनाने के लिए प्रायश्चित लेना चाहिए। हमने ऐसे घोर पाप तो किये ही नहीं हैं, अतः डरने का कोई कारण नहीं है। कदाचित् भयंकर पाप कर भी दिये हो, तो भी डरने की क्या आवश्यकता? प्रायश्चित लेने से उनकी आत्मा शुद्ध हो गई, तो क्या हमारी आत्मा शुद्ध नहीं होगी ? अरे जीव ! पाप करते हुए नहीं डरा, तो पापों की शुद्धि करने से क्यों डरता है ?

पुष्पचूला को देव ने स्वप्न में देवलोक का दृश्य दिखाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

3 नमो नमो खंधक महामुनि

जितशत्रु राजा और धारिणी के पुत्र खंधक कुमार पूर्वभव में चीभड़ी की छाल निकालकर खुश हुआ था कि ''कितनी सुंदर छाल उतारी है?'' इस प्रकार छाल उतारने का कर्मबंध हो गया। उसके पश्चात् उसकी आलोचना नहीं ली। क्रम से राजकुमार खंधक बने। फिर धर्मघोष मुनि की देशना सुनकर राज्य-वैभव छोडकर संयम लिया। राजकुमार में से खंधक मुनि बने। चारित्र लेने के पश्चात् बेले-तेले वगेरे कठोर तपश्चर्या कर काया को कृश दिया। एक दिन विहार करते-करते खंधक मुनि सांसारिक बहन-बहनोई के गाँव में आये। राजमहल के झरोखे में बैठी हुई बहन की नज़र रास्ते पर चलते मुनि के ऊपर पड़ते ही विचार करने लगी, ''कहाँ गृहस्थावास में मेरे भाई की गुलाब-सी काया और कहाँ आज तप के कारण झुर्रियाँ पड़ी हुई काले कोयले जैसी काया।

अरे ! चलते-चलते हड्डियाँ खडखड़ाती हैं। इस प्रकार अतीत की सृष्टि में विचार करती हुई भावावेश में आकर वह जोर-जोर से रोने लगी। मुनि पर दृष्टि और रुदन देखकर पास में बैठे हुए राजा ने सोचा कि, ''यह संन्यासी इसका पहले का कोई यार पुरुष होगा, अब उससे देहसुख नहीं मिलेगा, इसलिये रानी रो रही होगी।

तप से कृश हुए शरीर के कारण अपना साला होते हुए भी राजा मुनि को पहचान न पाया और जल्लादों को कह दिया कि, जाओ... उस मुनि की जीते जी चमड़ी उतार कर ले आओ। जल्लादो ने मुनि को कहा कि ''हमारे राजा की आज्ञा है कि आपके शरीर की चमड़ी उतारनी है। उन पर क्रोध न करके मुनि आत्म-स्वरुप का विचार करने लगे कि देह और कर्म से आत्मा भिन्न है। चमड़ी तो शरीर की उतारेंगे, इससे मेरे कर्मो की निर्जरा होगी, कर्मनिर्जरा करने का ऐसा अपूर्व अवसर फिर कब आयेगा ? इस प्रकार मन में सोचकर जल्लादों को कहा कि, ''अरे भाई ! तपश्चर्या करने से मेरा शरीर खुरदरा हो गया है। इसलिये तुझे तकलीफ़ न हो, इस प्रकार मैं खड़ा रहूँ।'' मुनि का कैसा उत्तम चिंतन ? अपनी तकलीफ़ का विचार न करके जल्लादों की तकलीफ़ का विचार करने लगे। अब आप ही सोचिये कि, ''जिसकी चमड़ी उतर रही हो, उसे तकलीफ़ ज्यादा होती है या जो चमड़ी उतार रहा हो, उसे ज्यादा होती है? समताभाव में ओतप्रोत मुनि ने राजा के जल्लादों पर जरा भी द्वेष नहीं किया। चार का शरण स्वीकार कर, काया को वोसिरा कर मुनि शुक्लध्यान पर मुनि चढ़ गये। चड़-चड़ चमड़ी उतरती गयी और मुनि शुक्लध्यान में आगे बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चले गये। पास में रही हुई मुहपत्ति खून से लाल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो गयी। माँस का टुकड़ा समझकर चील उसे लेकर आकाश में उड़ने लगी। संयोगवश वह मुहपत्ति राजमहल में रानी के आगे ही गिरी। मुहपत्ति को देखकर रानी ने नौकरों के पास जाँच करवाई, तब पता चला कि राजा ने ही हुकुम करके तपस्वी मुनि की हत्या करवाई है। भाई मुनि की करुण मृत्यु जानकर रानी का हृदय थरथर काँपने लगा। आँखों में से बैर-बैर जितने आँसू गिरने लगे। राजा को भी हकीकत का पता चलने पर दोनों छाती-फाड़ रुदन करने लगे। संसार में अघटित और अनुचित यह काम हुआ है। अब यदि संसार नहीं छोडेंगे, तो ऐसे काम होते रहेंगे, इस प्रकार संसार के स्वरूप का विचार कर दोनों ने दीक्षा लेकर आलोचना ली। एक सज्झाय में भी कहा है कि, 'आलोई पातकने सवि छंडी कठण कर्मने पीले'' आलोचना प्रायश्चित तप वगेरे करके केवलज्ञानी बनकर दोनों मोक्ष में गये।

यहाँ पर यह चिंतन करना चाहिये कि पूर्वभवमें चीभड़ी की छाल उतारने का प्रायश्चित न लिया, तो शरीर की चमड़ी उतरवानी पड़ी और इस भव में मुनि की हत्या करवायी, तो भी प्रायश्चित ले लिया, तो राजा-रानी मोक्ष में गये। इस चिंतन में ओतप्रोत होकर आलोचना लेने में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

4 प्रायश्चित से अरणिककुमार की आत्मशुद्धि...

अरणिक मुनि और उनकी माता ने चारित्र लिया था। संयम का विशुद्ध पालन करते करते मुनिश्री एक दिन ग्रीष्म ऋतु में दोपहर को गोचरी लेने के लिये गये थे। वहाँ धूप में उनके पाँव जल रहे थे। सिर भी धूप के कारण गरम हो चुका था। जैसे फूल मुरझा जाता है, ऐसी हालत मुनि की हो गयी थी। तब मुनिश्री एक मकान के नीचे खड़े रहे। कामवासना से आकुल बनी हुई एक नारी ने अपनी दासी के द्वारा मुनि को बुलवाया। गोचरी वहोराने के बहाने से दासी मुनि को ले गयी। नारी के कामण भरे वचन से मुनि का पतन हो गया। मुनि वहाँ के रंगराग में फँस गये। मुनिश्री की सांसारिक मातुश्री गली-गली में पागल व्यक्ति की तरह उसे ढूंढने लगी। माता की यह हालत देखकर मुनिश्री को बहुत आघात लगा। वह महल में से उतरकर माँ के चरणों में गिर पड़ा। सांसारिक मातुश्री साध्वीजी ने उसे समझाकर गुरु के पास भेजा, वहाँ मुनिश्री ने आलोचना ली। अंत में धगधगती शिला पर संथारा कर मुनि ने अनशन स्वीकारा और वे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये। महाव्रत का खंडन करने पर आलोचना-प्रायश्चित लेकर अरणिक मुनि ने आत्मशुद्धि की। यह जानकर हमें भी आत्म शुद्धि का अमोघ कारण रुप आलोचना अवश्य करनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित की ताकत...

केन्सर की गाँठ हो, फिर भी ऑपरेशन-SURGERY करने में आये, तो मरीज़ अच्छा हो जाता है। परंतु जो एक छोटा-सा भी काँटा पाँव में रह जाये, तो इंसान को मार डालता हैं। इसी प्रकार बड़े-बड़े पाप जीवन में हो गये हो, तो भी प्रायश्चित-आलोचना के प्रताप से जीव धवल हंस के पंख की तरह निर्मल बन सकता है। परंतु जो एक छोटा-सा भी पाप मन में छुपा दिया, तो सत्यानाश.... भवोभव बिगड़ जाते हैं। इसलिये जाओ गीतार्थ गुरुभगवंतो के चरणो में... शरम, अभिमान आदि को दूर कर काली स्याही जैसी जीवन की काली किताब को गुरु के चरणो में सौंप दो। एक भी पाप मन में न रह जाये... तन का पाप... मन का पाप... वचन का पाप..., सभी प्रायश्चित के प्रताप से जलकर खाक हो जायेंगे। ATOM BOMB से भी ज्यादा ताकत है इस प्रायश्चित में !!

यदि पाप करते ही रहे और आलोचना-प्रायश्चित से शुद्ध न हुए हों, तो आ जाईये वन्स मोर.... ONCE MORE नरकगति में.... जहाँ परमाधामी नारक जीव को भयंकर दुःख देते हैं.... शरीर के टुकड़े-टुकड़े करता हुआ असिपत्र वन, गरमागरम जस्ता.... हड्डी-माँस-खून से भरी हुई वैतरणी नदी आदि की वेदना, जो छक्के छुड़ा दे, ऐसी परिस्थिति... पल पल मृत्यु को चाहे... तो भी मृत्यु जहाँ कोसों दूर रहती है। अथवा तो जाईये पशुयोनि में सुअर बन कर आंध्र जैसे प्रदेशो में जीते जी जलकर मरना पडता है। महिष बनकर भरुच के ऊँचे ढलानों पर पानी उठाकर चढ़ना पड़ता है। ओह ! तब याद आयेगा कि प्रायश्चित ले लिया होता तो...!

प्रश्नोत्तर

प्रश्न :- आलोचना करने से क्या फल होता है ?

उत्तर :- रागद्वेष के कारण संक्लिष्ट मन से कर्म का बंध होता है। परंतु आलोचना करते समय अहंकार, माया आदि रागद्वेष कमजोर हो जाने से विशुद्धिवाले चित्त से कर्मों का क्षय होता है और सरलभाव प्राप्त होने से कर्मों का संपूर्ण क्षय होने पर मोक्ष भी हो जाता है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा है कि, "**आलोयणाअेणं भंते ! जीवे किं जणयई मायाणिया ? मिच्छ दरिसणसल्लाणं मोक्खमग्गविग्धाणं अणंतसंसारबंधणाणं उद्धरणं करेई उज्जुभावं च जणयई उज्जुभावपडिवा अेणं वियणं जीवे अमाई इत्थिवेयं नपुसंगवेयं च न वच्चई पुव्वबद्धं च णं निज्जरई**"

अर्थात् आलोचना करते समय मोक्षमार्ग में विघ्नभूत अनंत संसार के बंधन मिथ्यात्वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शल्यों का नाश होने से सरलभाव उत्पन्न होता है। जिससे स्त्रीवेद और नंपुसकवेद का बंध नहीं होता और अगर पूर्व में बाँधे हुए हो, तो उनका नाश हो जाता है। इतना ही नहीं, सभी कर्मों का नाश हो जाता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसीलिये कहा है कि, **उद्धरिय सव्वसल्ला, तित्थगराणाअे सुत्थिया जीवा, भवसयकम्माई खविओ पावाई ग्या सिवं ठाणं हि**

अर्थात् जिनेश्वर भगवान की आज्ञा में सुंदर रीति से रहे हुए जीव सभी शल्यों की आलोचना करके सेंकडो भवों के पापकर्मों का क्षय कर शिवस्थान यानी कि मोक्षधाम में पहुँचते हैं। कवि कलापी ने भी कहा है कि, ''हा पस्तावो विपुल झरणुं स्वर्गथी उतरे छे, पापी तेमां डूबकी लईने पुण्यशाली बने छे।।''

आलोचना कैसे लिखनी चाहिये ?

जीवन में कौन से पाप हो सकते हैं ? उन्हें समझाने के लिए और आलोचना लेने के लिए कुछ पाप स्थान-ज्ञानाचार आदि के अपराधों का ब्योरा **भव-आलोचना मार्गदर्शिका** नाम की पुस्तक में दिया गया है। वह पुस्तक इस पुस्तक के साथ निःशुल्क दी जाती है। उसमें से जिस पापस्थान का सेवन किया हो, उस पाप स्थान का क्रमांक एक नोट बुक या कागज पर लिख लीजिये। ज्ञात, अज्ञात या बलात्कार आदि रीति से पाप हुआ हो, उसी प्रकार धर्मस्थान या अन्यत्र होटल आदि में हुआ हो, जैसे भाव से यानी दर्द से या आनन्द पूर्वक हुआ हो, उसी प्रकार एक-एक क्रमांक के आगे कागज में विवरण लिख लीजिये। लिखने के बाद पुनः पढ़ लीजिये। बाद में क्रमांक के स्थान पर संपूर्ण विगत व्यवस्थित रीति से लिख लीजिये। फिर उस पुस्तक के अंत में रहे हुए एक पेज निकालकर पू. गुरुदेवश्री को दे दीजिये। फिर जो प्रायश्चित गुरुदेवश्री दे। उसे पूर्ण करने का प्रयत्न कीजिए।

उस पुस्तक में जितने पापस्थानक लिखे हुए हैं, उनसे अन्य पापस्थान का जीवन में सेवन किया हो, तो उन्हें गीतार्थ गुरु भगवंत के पास समझने का यत्न करना चाहिये। इस पुस्तक में लिखे गये पापस्थानकों के सिवाय पाप स्थानक नहीं होते, ऐसा न मानें, इस पुस्तक के पाप स्थानक तो केवल दिग्दर्शन मात्र हैं, ऐसा समझना चाहिए। उस पुस्तक से अतिरिक्त पापों की भी आलोचना लेनी चाहिये।

अपने जीवने ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य की प्रवृत्तियों में जो अपराध किये हो, उन्हें याद कराने के लिये अब ज्ञानाचारादि के अपराधों (अतिचारों) की सूची उस पुस्तक में दी गई है। उसे आप पढ़ेंगे, तो मालूम होगा कि मैंने कौन-कौन से अपराध किये हैं। अपराधों का ब्यौरा लिखकर गुरूदेव के पास प्रायश्चित लेंगे, तभी अपनी आत्मा शुद्ध होगी।

भूल से भगवान की आज्ञा के विरुद्ध लिखने में आया हो, तो मिच्छामि दुक्कडं।

For Personal & Private Use Only
www.jainelibrary.org

विशेष नोंध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशेष नोंध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक हती राजकुमारी

गुज., अंग्रेजी = १००/-

प्रासंगिक मल्टी कलर में फोटो युक्त, हनुमानजी की मातुश्री अंजनासुंदरी के चरित्र की करुण हृदयस्पर्शी कहानी है।

भक्तामर स्तोत्र सचित्र

हिन्दी, गुज. = ३०/-

शत्रुंजय तीर्थाधिपति श्री आदिनाथ भगवान के ४४ तीर्थों के दर्शन वाला सचित्र भक्तामर स्तोत्र इसमें है।

चालो आपणे साचा जैन बनीये

गुज.

श्रावक के दैनिक ६ कर्तव्य आदि विषयों का विस्तार से वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

चलो अनानुपूर्वी गीने

हिन्दी, गुज. = ४०/-

सुंदर रंगीन अलग अलग २४ तीर्थंकर भगवान के २४ चित्रों सहित अनानुपूर्वी की आकर्षक पुस्तक।

पर्युषण महापर्व के प्रव... और सांवत्सरिक क्षमाप...

हिन्दी, गुज. = १०/-

पर्युषण महापर्व के ८ व्याख्... सहित सांवत्सरिक क्षमापना ... भेजने की अद्‌भुत भेंट।

पूज्यश्री के द्वारा प्रस्तुत

उत्तम साहित्य

Jain Education International
For Personal & Private Use Only
www.jainelibrary.org

खवग-सेढी

प्राकृत, संस्कृत

६ वर्ष के अल्प पर्याय में पूज्यश्री द्वारा लिखित २०,००० श्लोक प्रमाण, प्राकृत-संस्कृत भाषा में क्षपकश्रेणि का विश्लेषण करता अलौकिक महाग्रंथ है। बर्लीन युनिवर्सिटी के प्रोफेसर क्लाऊझ ब्रून ने भी इसकी खुब प्रशंसा की है।

अनशन को सिद्धवट हो

हिन्दी, गुज., अंग्रेजी = ३०/-

रंगीन प्रासंगिक फोटो सहित ६ गाउ की भावयात्रा और साडे आठ करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त करनेवाले शांब व प्रद्युम्न का विस्तृत चरित्र है।

बंधनकरण

संस्कृत = १००/-

इस ग्रंथ पर पूज्यश्री ने १५,००० श्लोक प्रमाण संस्कृत टीका लिखी है। इसमें सत्पदादि द्वार से आठ कर्मों के बन्ध की मार्मिक जानकारी है।

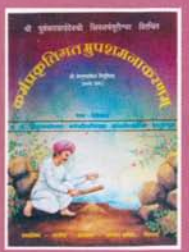

उपशमनाकरण

प्राकृत, संस्कृत = १००/-

१५,००० श्लोक प्रमाण प्राकृत संस्कृत भाषा में उपशम श्रेणि के विषय का अद्भुत ग्रंथ है। उपशम सम्यक्त्व प्राप्ति, क्षयोपशम और क्षायिक सम्यक्त्व, अनंतानुबंधि कषाय का क्षय, देशविरति और उपशम का तात्विक वर्णन है।

चित्रमय तत्वज्ञान अल्बम

हिन्द, गुज. = ५०/-

प्रवेशकों को संक्षेप में १४ राजलोक अढ़ी द्वीप, नौ तत्व आदि १७ विषयों पर मल्टी कलरमय १७ चित्रों सहित तत्वज्ञान की एक झाँकी।

पूज्यश्री के द्वारा प्रस्तुत उत्तम साहित्य

Jain Education International
For Personal & Private Use Only
www.jainelibrary.org

टेन्शन टु पीस

गुज., हिन्दी = १०/-

विश्व भर के टेन्शनों से भरे हुए मानव के मन के लिये शांति के विविध प्रयोगों को बताने वाली यह पुस्तक है।

चलो सिद्धगिरि चले

हिन्दी, गुज., अंग्रेजी = २००/-

शत्रुंजय महातीर्थ के प्रत्येक स्थान की संपूर्ण जानकारी और उनके ऐतिहासिक वर्णन के साथ संपूर्ण भावयात्रा का हबहू विवेचन करती हुई यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। रंगीन चित्रों के साथ छपी हुई यह आकर्षक सर्व प्रथम पुस्तक शत्रुंजय महातीर्थ की यात्रा करने व करवाने में सभी को विशेष उपयोगी बनेगी।

रे कर्म तेरी गति न्यारी

गुज., हिन्दी = २०/-

आत्मा प्रत्येक समय में किस प्रकार, कौन-कौन से कर्म बांधती है ? और उन कर्मों का क्या-क्या फल होता है ? इस प्रकार के विशेष तत्वज्ञान वाली यह पुस्तक गुजराती में है।

श्री शत्रुंजय आदि ४ महातीर्थ

दिशा दर्शक यन्त्र

हिन्दी, गुज., अंग्रेजी = ७०/-

इस विश्व के किसी भी कोने में रह कर आपको शत्रुंजय, शंखेश्वर, सम्मेतशिखर अथवा नाकोड़ा तीर्थ को भाव से वंदन करने हों, तो अपने स्थान से उन-उन तीर्थों की दिशा बतानेवाला यह यन्त्र आज ही बसा लीजिए।

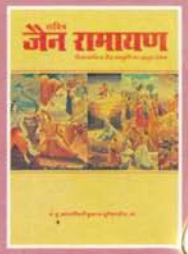

जैन रामायण

हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. = ४००/

राज्य के हक को तिलांजलि देक राम का पिताश्री के प्रति समर्प भाव, सुशील पत्नी का त्याग कर वाले राम के प्रति सीताजी के समर्पण भाव, वृद्ध को देखक दशरथ की, चाचा की मृत्यु क देखकर लवकुश की और सूर्पण को देखकर हनुमानजी की दी वगैरह कौटुम्बिक संस्कारो अ आध्यात्मिक संस्कारो के लिए ज पढ़िये सचित्र जैन रामायण।

पूज्यश्री के द्वारा प्रस्तुत

उत्तम साहित्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक पावन परिवर्तन

उपधान

आत्म जागृति का सुअवसर

आत्म निरीक्षण • निजभाव परीक्षण • स्वदशा अवलोकन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Learn from past, live in present and plan the future.

भूतकाल की भूलों से सीखो...

वर्तमान में जीओ और भविष्य की प्लानिंग (योजनाएँ)
इस प्रकार बनाओ कि जिससे उन भूलों की पुनरावृत्ति न हो पाए।
भूल इंसान से ही होती है, परंतु वह अपनी भूलों का इकरार कर
सदगुरु के पास प्रायश्चित ले लेता है,
तो वह इंसान पूजनीय व परमात्मा बन जाता है।

शास्त्र में कहा है कि,

''जं पडिसेविज्जइ, तं न दुक्कर।
जं आलाइज्जइ, तं दुक्कर ।।१।।''
पाप का सेवन करना, वह मुश्किल नहीं,
परंतु उसकी आलोचना लेनी,
वह ज़्यादा मुश्किल काम है।

इस पुस्तक की विशेषता

धन्य है जिनशासन।
जिसमें पापीओं के पाप को धोनेवाले
प्रायश्चित का उत्तम विधान है।
क्या गंगा मैली तो मैली ही रहेगी? नहीं। नहीं...
प्रक्रिया करोगे, तो वह शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल बन जायेगी।
प्रायश्चित में यह अपूर्व शक्ति है, कि
उसके बल पर आत्मा संपूर्ण निर्मल बन सकती है।

MULTY GRAPHICS
022) 23873222*23884222

Jain Education International
For Personal & Private Use Only
www.jainelibrary.org